प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

(हिन्दी-दिवस-विशेषाङ्क)

सम्पादक
डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'

संयुक्त-सम्पादक
डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा

वर्ष १९८४] (मार्च से सितम्बर तक) [अङ्क : २

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान संरक्षक

श्री बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एव उप-कुलपति

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ० राधेलाल वार्ष्णेय, जनसम्पर्क अधिकारी

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार

प्रकाशक

वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१—	वैदिक वन्दना	पं० सत्यकाम विद्यालंकार	१
२—	सम्पादक की कलम से		२
३—	देश की एकता की कडी हिन्दी	पद्मश्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'	१०
४ —	हिन्दी अभियान की रचनात्मक दिशाएँ	डॉ० हरवंशलाल शर्मा	१५
५—	द्वितीय राजभाषा उर्दू कैसी होगी ?	डॉ० श्रीनारायण चतुर्वेदी	२४
६—	महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका पत्र-साहित्य	डॉ० कमल पुंजाणी	३७
७—	सिन्धु-संस्कृति के निर्माता	डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा	४१
८ —	वैदिक युग मे प्रजातंत्र	डॉ० जबरसिंह सेंगर	४४
९—	परिसर परिक्रमा		५१
	(अ) संस्कृत-दिवस पर कुलपति जी का भाषण		
	(आ) प्रौढ शिक्षा प्रशिक्षण शिविर का विवरण	डॉ० त्रिलोक चन्द	५६
	(इ) अनुदान आयोग की अध्यक्ष गुरुकुल मे	श्री भोपाल सिंह	६०
१०—	पुस्तक-समीक्षा	समीक्षक	६१
	(अ) वेदो के राजनीतिक सिद्धान्त	श्री बलभद्र कुमार हूजा	६३
	(आ) संस्कृत काव्यशास्त्र पर भारतीय दर्शन का प्रभाव	डॉ० मानसिंह	६५
	(इ) नागार्जुन	डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'	६७
	(ई) हरियाणा का हिन्दी साहित्य . उद्भव और विकास	श्रीमती प्रतिमा शर्मा	६९
	(उ) संस्कृत नाटको का जीव-जगत्	डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार	७१
	(ऊ) सत्यदेव परिव्राजक व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व	डॉ० राकेश शास्त्री	७३

संग्रहालय के झरोखे से—

'प्रह्लाद' के मुख-पृष्ठ पर अंकित चित्र का विवरण

—सुखबीर सिंह (सहायक क्यूरेटर)

पत्रिका के मुखपृष्ठ पर अकित चित्र, सग्रहालय मे सुरक्षित उस पाषाण-फलक का है जो लदन मे भारतोत्सव के अन्तर्गत प्रदर्शनी मे रखा गया था। पुरातात्त्विक दृष्टि से इसका विवरण इस प्रकार है

समुद्र-मन्थन का पाषाण-फलक

नं० ३१८०, समय ६-१०वी शती, और भार लगभग १३० किलोग्राम है। इस फलक का आकार, आगे की ल० ६३ सेमी० पीछे की लं०६३ सेमी०, चौ० ३१ सेमी०, ऊँचाई—आगे २८ सेमी०, पीछे २० सेमी० है। पुरातत्त्व सग्रहालय को यह फलक ग्राम झीवरहेडी (सहारनपुर) से प्राप्त हुआ। इस फलक मे कच्छप पर मन्दराचल पर्वत की मथानी है जिसमे शेषनाग रज्जु के स्थान पर लपेटा गया है। फलक मे दायी ओर एक देवता और बायी ओर आठ दैत्य खड़े हुए समुद्र का मन्थन कर रहे हैं। फलक मे शेषनाग का मुह देवता की ओर तथा पूछ दैत्यो की ओर स्पष्ट है।

कला की दृष्टि से यह फलक इतना महत्त्वपूर्ण नही है, परन्तु भाव-प्रदर्शन की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमे देवताओ और दैत्यो द्वारा समुद्र-मन्थन के दृश्य का बहुत ही मनोहारी अकन किया गया है। सग्रहालय का यह समुद्र-मन्थन का पाषाण-फलक लन्दन मे हुये 'भारत उत्सव' वर्ष १९८१-८२ मे प्रदर्शित किया गया। गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के लिये यह बड़े गौरव की बात है।

समुद्र-मन्थन एक पौराणिक मिथ है। पृथ्वी के उत्खनन का श्रेय यदि पौराणिक मिथ मे पृथु के गोदोहन के प्रतीक मे सुरक्षित है, तो समुद्र-मन्थन द्वारा मानवोपयोगी वस्तुओ की प्राप्ति का प्रयत्न इस घटना मे सुरक्षित कहा ज सकता है। उत्खनन तथा मन्थन की पुरातात्त्विक धारणाओ का यह एक प्रागैतिहासिक रूप है।

———

वैदिक वन्दना

ऊँ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता
तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु
(कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।)

यजु० ३४,४

'येन, अमृतेन इदं भूतं भुवन, भविष्यत् परिगृहीतम्' जिसके अमृत में वर्तमान, भूत और भविष्यत्—सब कालो का क्रियाशील जगत् परिव्याप्त है, 'येन यज्ञस्तायते सप्त होता' जिस अमृत की आहुति से सप्तेन्द्रियो का यज्ञ चलता है, उस सच्चिदानन्द को हम अपना जीवन अर्पित करते है।

जिसके अमृत घर में डूबे, भूत भविष्यत वर्तमान हैं ।
जिसकी यज्ञवेदि मे सारे भुवन अकिंचन तृण समान हैं ।
जिसकी ज्वालाओं में तपकर, प्राणी जीवन पाते हैं ।
(उसी देवता के चरणों में हम सब हविष चढ़ाते हैं ।)

(वैदिक वन्दना गीत पृष्ठ ८७)

पण्डित सत्यकाम विद्यालकार

सम्पादक की कलम से

५ अप्रैल १६८४ का दिन भारतीय इतिहास मे महत्त्वपूर्ण है। इस दिन भारत के अन्तरिक्ष यात्री स्क्वाड्रन लीडर श्री राकेश शर्मा से हिन्दी मे बातचीत करते हुए माननीया प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा था— 'हमारे देश के लोगो की निगाहे, आपकी ओर लगी हैं और वे हमारी बातचीत भी सुन और देख रहे है। हमारे देशवासी, हमारी पार्लियामेंट और व्यक्तिगत रूप से मैं, आप और आपके सह-अतरिक्ष यात्रियो कर्नल यूरी माल्यशव और श्री गेन्नादी स्त्रेकालोव की सफलता और सुरक्षित वापसी की प्रार्थना करते है। आप सब को मेरी शुभकामनाएँ। जयहिन्द।' इस ऐतिहासिक बातचीत का समापन भी प्रधानमन्त्री ने हिन्दी मे ही किया। यह घटना एक शुभ लक्षण है और अतरिक्ष यात्रियो के साथ हिन्दी-सवाद राष्ट्रीय अस्मिता को उजागर करने वाला है, काश हिन्दी की यह दिगन्तव्यापी कीर्ति विश्व के जनमानस मे कभी स्थान ग्रहण कर सके। विदेशी भाषा के दीर्घकालीन प्रयोग से हम नितान्त आत्म हीन हुए है। जब तक समूचे समाज के परस्पर सामूहिक व्यवहार मे विदेशी भाषा रहेगी तब तक हम समृद्ध राष्ट्र के उन्मुक्त वातावरण की कल्पना नही कर सकते। आज हिन्दी को महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी, महामना मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टडन तथा सेठ गोविन्द दास जैसे समर्पित मनीषी व्यक्तियो की आवश्यकता है जिन्होने हिन्दी को राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के साथ जोडकर उत्तर-दक्षिण को सयुक्त राष्ट्रीय अभियान चलाने के लिए एक सशक्त वाणी दी। भारत के संविधान मे संघ की राजभाषा के रूप मे जब हिन्दी को घोषित किया गया था, उस समय सविधान के निर्माताओ के सामने हिन्दी की व्यापक रूप-रेखा विद्यमान थी, किसी प्रान्त विशेष तक सीमित सकीर्ण रूप की कल्पना तो आज के राजनीतिज्ञ की उपज है। बगला, पजाबी, मराठी, तमिल, तेलगू, कन्नड आदि क्षेत्रीय भाषा है तथापि प्रयोग बाहुल्य की दृष्टि से हिन्दी को समग्र भारत के जनमानस को प्रतिबिम्बित करने मे उपयुक्त और सक्षम मानकर सब की राजभाषा के रूप मे स्वीकार किया गया। विदेशी भाषा के माध्यम से शासन का काम काज चलाना स्वदेशी भावना के सर्वथा विपरीत भी है और सास्कृतिक दृष्टि से अवाछनीय भी। सम्पर्क सूत्र के रूप मे हिन्दी का प्रयोग लम्बे समय से साधु सत भी करते रहे थे। अत सामान्य जन को एक समन्वित चेतना सूत्र मे बाँधने का काम हिन्दी ने किया था। हिन्दी राजभाषा और जनभाषा दोनो रही

है, इसलिए सद्भावना, सौहार्द्र, समरसता और राष्ट्रीयता के प्रबल संकल्प के साथ भाषाओ के वैविध्य मे भी समग्र जनमानस को समेकित करने के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप मे हमे स्वीकार करना चाहिए तथा उसके अधिकाधिक प्रयोग द्वारा उसके अखिल भारतीय रूप निष्पादन मे सहयोग देना चाहिए। 'वन्देमातरम्' के रचयिता श्री बकिम चन्द ने कहा था—हिन्दी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो के बीच जो लोग एव बन्धन स्थापित कर सकेगे, वे ही सच्चे भारत बधु नाम से अभिहित किए जाने योग्य है। सभी चेष्टा करे, चाहे कितने ही दिन बाद क्यो न हो, मनोरथ पूर्ण होगा। हिन्दी भाषा मे पुस्तक और वक्तृता द्वारा भारत के अधिकाश स्थानो की मंगल साधना कीजिए।'

हिन्दी के राजभाषा विषयक स्वरूप को लेकर केन्द्र मे हमेशा बहस छिडती रही है। १६४६ की संविधान सभा से लेकर आज तक हिन्दी की स्थिति को विवादास्पद बनाया जाता रहा है। सरदार पटेल की धारणा इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण है और उसी के परिप्रेक्ष्य मे हमे आगे बढना चाहिए। २८-११-१६४६ को उन्होने मगन भाई देसाई के नाम लिखे एक पत्र मे कहा था कि राष्ट्र भाषा राजभाषा का अन्तिम निर्णय तो संविधान सभा ने कर लिया है. इसलिए अब तो उस निर्णय पर अमल करना सबका कर्त्तव्य हो जाता है। राष्ट्रभाषा न तो किसी एक प्रान्त की है। वह तो सारे भारत की भाषा है और इसके लिए यह आवश्यक है कि सारे भारत के लोग उसे समझ सके और अपनाने का गौरव हासिल कर सकें। उक्त परिप्रेक्ष्य में ही सविधान के ३५१ अनुच्छेद को लेना चाहिए।

राजभाषा विभाग भारत सरकार के सयुक्त सचिव श्री देवेन्द्र चरण मिश्र ने सांविधानिक परिप्रेक्ष्य मे राजभाषा की प्रगति का विवेचन देते हुए जो आँकडे प्रस्तुत किए है, उनमे उत्साह बढता है। संघ के सरकारी प्रयोजनो के लिए हिन्दी के प्रगामी प्रयोग, हिन्दी शिक्षण योजना, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, केन्द्रीय राजभाषा सेवा गठन तथा १६६३, १६६७ के संशोधित अधिनियमो के तहत भारत सरकार ने राजभाषा नीति के कार्यान्वियन मे जो कार्य किया है, उसके लिए वह बधाई की पात्र है। राजभाषा अधिनियम में हिन्दी के प्रयोग के बारे मे ३ प्रमुख प्रावधान हैं।

(१) राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३) मे उल्लिखित कागजात जैसे—सामान्य आदेश, अधिसूचनाएँ, सकल्प, प्रेस विज्ञप्तियो, ससद के समक्ष

प्रस्तुत किए जाने वाले कागजात आदि द्विभाषी रूप से हिन्दी और अंग्रेजो में जारी किए जाएँ। ८२-८३ मे ऐसे कागजातो की संख्या ८०, ७३० थी।

(२) हिन्दी भाषा राज्यो तथा उन राज्यो के साथ जिन्होने केन्द्र सरकार के साथ हिन्दी मे पत्राचार करना स्वीकार किया है, सभी मूल-पत्र हिन्दी मे भेजे जाएँ। इन राज्यो मे स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयो के साथ पत्राचार मे हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए। ८३-८३ मे ३,६८,६६४ पत्र मूलरूप मे हिन्दी मे लिखे गए।

(३) हिन्दी मे कही से भी प्राप्त पत्रादि के उत्तर हिन्दी मे हो दिए जाएँ। ८३-८३ मे ऐसे २,३२,५०१ पत्रो के जवाब हिन्दी मे दिए गए।

इतना होने पर भी राजनीतिक दबावो के कारण हिन्दी तथा नागरीलिपि के दैनन्दिन प्रयोग मे बाधा डालने का षडयन्त्र किया जा रहा है, हिन्दी के गढ उत्तर-प्रदेश मे ही सरकार ने जिद पकड ली है कि वह उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाकर रहेगी। १६८० से लेकर १६८४ तक सरकार ने तीन-तीन अध्यादेश जारी कर हिन्दी की संवैधानिक स्थिति की मजाक उडायी है। विधान सभा को साथे विश्वास मे न लेकर राज्यपाल के विशेषाधिकार से उर्दू की प्रतिष्ठा का षडयन्त्र हिन्दी की पीठ मे छुरा घोपने जैसा है। माननीय श्री वासुदेवसिह जी मत्री आवकारी-विभाग के विधान सभा मे प्रत्यक्ष विरोध के बावजूद यह विधेयक विधान सभा की कार्यसूची मे अब भी विद्यमान है। ६ अप्रैल को उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा द्वितीय राजभाषा सशोधन अध्यादेश को अवैध घोषित किए जाने के बाद भी सरकार उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाने के प्रति दृढ सकल्प है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मत्री श्री प्रभात शास्त्री ने इस अवसर पर ठीक ही कहा है कि जिस अल्प सख्यक को प्रसन्न करने के लिए सरकार उर्दू को राजभाषा बनाने के लिए हर जायज नाजायज काम करने पर उतारु है, उसके घरो मे भी हिन्दी पहुँच गई है। पिछले सैतीस वर्षो मे हिन्दी मे सभी लिख पढ रहे है क्योकि यह अल्पसख्यक भी मूलत भारतीय है। भारत की मिट्टी और गध मे वह जिये है। वह इस वातावरण मे ही रसते-बसते है। लगभग ३०० वर्षों से इन घरो मे जमी उर्दू-फारसी का नाम ३७ वर्षो मे गायब हो गया है। इसका कारण यह नही है कि किसी ने जोर जबरदस्ती की है। वास्तविकता यह है कि यह भाषा, इसके मुहावरे, प्रतीक, बिम्ब सब हिन्दू-मुसलमान दोनो को आनन्द देते है। वस्तुत. सरकार चाहे भी तो इस एक सत्य को काट नही सकती और फारसी-अरबी के प्रतीक बिम्ब कभी भी भारतीय आत्मा मे घुल-मिल नही सकते। उर्दू के नाम पर अकादमियो और विद्यालयो मे लूट मची है, उससे कुछ व्यक्तियो

को लाभ होता रहेगा। उर्दू का हित नही होगा। बिहार और उत्तर-प्रदेश की सरकारो का कहना है कि चुनाव के समय काग्रेस ने उर्दू को दूसरी भाषा के रूप मे स्थान देने का वायदा किया था। पहली बात तो यह है कि ऐसा वायदा क्यो किया गया था जो राष्ट्रीय एकता के हित मे नही है जिससे नये भूत खडे होते है, जिससे देश प्रदेश मे झगडे पैदा हो सकते है, एक खतरनाक मिसाल खडी हो जाती है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि जो देश के सविधान और उसके अनुसार बने विधि-विधानो के प्रतिकूल है।'

राजर्षि टडन के अनन्य सहयोगी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सस्थापको मे से एक हिन्दी के वयोवृद्ध विद्वान् पद्मभूषण पण्डित श्री नारायण चतुर्वेदी जी ने सरकार से इस विघटनकारी कार्य का जमकर विरोध किया। उन्होने कहा कि आज जो उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने की मॉग है वह न तो बहुसख्यक समाज और इस देश के मूल निवासी मुसलमानो की है और न उनके हित मे है। मुस्लिम जनता के लिए यह फ़ारसी बहुल उर्दू उतनी ही जटिल और कठिन है जितनी उनके हिन्दू पडौसियो के लिए। यह मॉग भारत मे बसे उन मुट्ठी भर विदेशी मूल के उच्च वर्ग के मुसलमान आभिजात्य वर्ग की है जिनके बारे मे ऊपर लिखा जा चुका है। वे सामान्यत नगरो मे रहते है और उच्च पदो पर है। वे प्रभावशाली है। उन्हे अरबी, फ़ारसी के विद्वान् उलमाओ का समर्थन प्राप्त है और उलमाओ का प्रभाव अशिक्षित मुसलमान जनता पर है किन्तु वास्तव मे यह मॉग केवल नगरो के उच्च वर्ग की है जिनका अनुपात मुसलमानो मे अधिक से अधिक दस प्रतिशत होगा। १६७५ की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश मे मुसलमानो की जनसख्या का अनुपात १५ प्रतिशत था। १६८१ की जनगणना के आँकडे अभी उपलब्ध नही है किन्तु उनसे कोई विशेष अन्तर नही पडता। अत-एव उर्दू को दूसरी राज भाषा बनाने की मॉग राज्य के केवल डेढ प्रतिशत लोगो की मॉग मानी जा सकती है।' आगे श्री चतुर्वेदी जी ने सुझाव दिया है कि यदि उर्दू वाले फारसी शब्दो को लेना बन्द कर दे, देशी शब्दो का अधिक इस्तेमाल करे और उर्दू को देवनागरी भाषा मे भी लिखने लगे या कम से कम उसमे लिखने का विकल्प या आप्शन दे दे तो आज हिन्दी और उर्दू मे जो फर्क है वह धीरे-धीरे दूर हो जायेगा। हिन्दी पर उर्दू का और उर्दू पर हिन्दी का प्रभाव पडेगा और धीरे-धीरे एक ऐसी भाषा विकसित हो जायेगी जो वास्तव मे मुश्तर्का होगी और हमारे राज्य मे हिन्दी-उर्दू का झगडा इतिहास की एक कड़वी याद भर रह जायेगा।

उर्दू का देशकाल

२६ दिसम्बर १६४७ को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का ३५वाँ अधिवेशन बम्बई मे हुआ था। उस अवसर पर हिन्दी साहित्य परिषद् के सभापति पद से

भाषण करते हुए श्री चन्द्रबली पाण्डे ने कहा था—फारसी कविता मे लैला मजनू ही नही अयाज-महमूद की भी जोडी है। उर्दू को अपनी संस्कृति के कारण इसमे कोई दोष नही दिखाई देता, यहाँ तक कि उर्दू के एक अल्लामा पडित उर्दू को हिन्दू सिद्ध करने के लिए इसका एक अजीब उदाहरण धर देते हैं—

खत निकले प बोसये रुखे पुरनूर का पाया,
खैरात बरहमन को मिली चाँद गहन से।

शेर शेख हातिम का है। आप उर्दू की जबान के आदि उस्ताद और हिन्दी भाषा को त्यागने वाले प्रथम वीर है। आप किसी दाढी निकालते हुए माशूक का चुम्बन क्या करते है, चन्द्रग्रहण मे ब्राह्मण का दान पा जाते है। परन्तु ब्राह्मण की स्थिति यह है कि न तो उसका यार कोई दढियल अमरद होता है और न वह चन्द्रग्रहण का दान ही लेता है। उर्दू के लोग इसे एशियाई शादूरी का गुण बताते है पर है यह वास्तव मे फारसी और उर्दू की भाती। रही उर्दू की बात। सो उसकी दशा निराली है, मुँह से वह सबकी है पर दिल से इसलाम की और धधे मे ईरान की। तभी तो उसके दूसरे उस्ताद 'सौदा' कहते है—

गर हो कशिशे शाहे खुरासान तो 'सौदा',
सिजदा न करूँ हिन्द की नापाक जमीं पर।

अर्थात्—यदि खुरासान का बादशाह चाहे तो मै हिन्द की अपवित्र भूमि पर नमाज भी न पढूँ। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ' लिखने वाले इकबाल तक कहते हैं—

है तर्के बतन सुन्नते महबूब इलाही।
दे तू भी नबूव्वत की सदाकत प गवाही॥
गुफ्तार सियासत में वतन और ही कुछ है।
इरशादे नबूव्वत में वतन और ही कुछ है॥

भाव यह कि हिन्दी का देश प्रेम इसलाम के लिए घातक है। अतएव प्रत्येक मुसलमान को उसका परित्याग कर देना चाहिए और नवी के सच्चे मार्ग पर आ जाना चाहिए। राजनीति मे देश का अर्थ और होता है और नवी के प्यारो की बोली मे और, फिर दोनो को एक क्यो किया जाय ?

तात्पर्य यह कि उर्दू की मर्यादा और उसके संस्कार अभारतीय है। अलाउद्दीन जैसे कट्टर मुस्लिम शासक के दरबारी कवि अमीर खुसरो ने तो यहाँ

तक कह दिया था कि मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ हिन्दवी में बातचीत करूँगा। मिस्र की शक्कर का मुझे क्या पता कि अरबी झाँडू—

तुर्क हिन्दोस्तानियम मन हिन्दुई गोयम जवाव,
शक्करे मिस्री न दारम कज़ अरब गोयम सखुन।

काश, आज का भारतीय अल्प सख्यक खुसरो को अपना आदर्श बनाकर चला होता।

दयानन्द और हिन्दी

महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को आर्यभाषा घोषित कर हिन्दी के लिए जहाँ नया वैचारिक क्षितिज तैयार किया, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाने को प्रेरणा दी वही व्याकरणानुसार भाषा के सस्कार का कार्यकर पुरानी सधुक्कडी हिन्दी को आधुनिक रूप दिया। उन्होने कहा था—'भाई' मेरी आँखे तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही है जब कश्मीर से कन्या-कुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लगेंगे। जिन्हे सचमुच मेरे भावो को जानने की इच्छा होगी वे इस आर्यभाव का सीखना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। अनुवाद नो विदेशियो के लिए हुआ करते है।' हिन्दु पुनर्जागरण काल मे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी उन्होने हिन्दी मे लिखा तथा हिन्दी मे व्याख्यान दिए। पजाब मे स्वामी जी तथा पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी के हिन्दी-प्रचार ने ऐतिहासिक कार्य किया। उर्दू के गढ मे रोपा गया हिन्दी का बिरवा आर्य समाज के प्रयत्नो से आज वट वृक्ष के रूप मे लहरा रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दी-प्रचार के लिए एक ओर 'सद्धर्मप्रचारक' उर्दू से हटाकर हिन्दी मे निकाला तो दूसरी ओर गुरुकुल कागडी की स्थापना कर भारतीय प्राच्य ज्ञान परम्परा तथा पाश्चात्य विज्ञान और मानविकी के विषयो के अध्ययन-अध्यापन के लिए हिन्दी को माध्यम बनाया। श्री गोवर्धन शास्त्री जैसे विद्वानो ने विज्ञान पर उस समय हिन्दी मे ग्रन्थ उनकी ही प्रेरणा से लिखे थे। स्वामी जी के सरक्षण मे इन्द्र जी ने विजया नामक हिन्दी दैनिक भी निकाला था। महर्षि दयानन्द के जीवनकाल मे ही मेरठ से 'आर्य-समाचार' नामक पत्र निकलने लगा था। बाद मे फर्रुखाबाद से 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' तथा शाहजहाँपुर से 'आर्य दर्पण' नामक पत्र भी स्वामी जी की प्रेरणा से निकले। श्री क्षेमचन्द्र जी सुमन ने बड़े विस्तार से पटना कवि सम्मेलन के अध्यक्ष पद से ४ नवम्बर १९६३ को दिए गए भाषण मे इस सामग्री पर प्रकाश डाला था।

महात्मा गाँधी ने १६१८ मे साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन मे दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए किए गए सकल्प को चरितार्थ करने के लिए देवदास गाँधी को मद्रास भेजा। इस कार्य मे इन्दौर नरेश और सर सेठ हुकमचन्द ने आर्थिक सहायता प्रदान की। महात्मा जी की प्रेरणा से आर्य संयासी सहदेव परिव्राजक मद्रास गये तथा १६१८ के अगस्त मे गोखले हाल मद्रास मे हिन्दी कक्षाएँ प्रारम्भ की। हिन्दी न जानने वालो के लिए उन्होने 'हिन्दी की पहली पुस्तक' नाम से एक पाठ्य पुस्तक भी तैयार की १६२१ मे गुरुकुल विश्व-विद्यालय के कुलपति तथा सम्प्रति परिद्रष्टा डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालकार ने बगलौर जाकर हिन्दी की कक्षाएँ प्रारम्भ की। उन्हो दिनो उन्होने 'हाउ टू लर्न हिन्दी' नामक पुस्तक भी लिखी थी। महाविद्यालय गुरुकुल के स्नातक के०एम० उन्निदामोदरन ने केरल मे हिन्दी प्रचार का कार्य किया। उन्होने रियासत के राजकुमारो को भी हिन्दी-संस्कृत पढाई। कागडी के स्नातक श्री केशव देव विद्यालकार ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से 'हिन्दी प्रचारक' का प्रकाशन भी कराया। दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर के विद्यार्थी डॉ० एन० चन्दकात मुदलियार ने हिन्दी के लिए बडा कार्य किया। कर्नाटक के श्री रामचन्द्र अय्यर ने १६२६-२७ मे स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्रेरणा लेकर 'कंगेरी' मे गुरुकुल की स्थापना की। आन्ध्र के विख्यात साहित्यकार रमेश चौधरी आरिगपुडि की प्रारम्भिक शिक्षा तो कागडी मे ही हुई थी। हैदराबाद और पजाब के हिन्दी आन्दोलन मे भी गुरुकुल ने हिस्सा लिया है।

तात्पर्य यह कि हिन्दी - प्रचार का अनवरत कार्य महर्षि दयानन्द के अनुयायीयो ने मिशनरी भाव से किया। आर्य समाज से शिक्षित, दीक्षित कार्यकर्ता आदि दक्षिण मे जाकर हिन्दी-प्रचार न करते तो आज जो रूप दिखाई पड रहा है, उसकी कल्पना भी नही की जा सकती थी।

विदेशों में हिन्दी

आज़ादी के बाद भारतेतरदेशो में भी हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति अभिरुचि बढी है फिजी, मारिशस, गुयाना, सूरीनाम, ट्रिनीदाद, नेपाल, लका, थाईलैण्ड, केनिया, मलेशिया, युगाण्डा, तंजानिया, बंगला देश, पाकिस्तान, अमेरिका, जापान, इंग्लैण्ड, सोवियतसंघ, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैण्ड, चीन, पोलैण्ड, इटली तथा अफगानिस्तान मे हिन्दी का प्रवेश पाया जाता है। इनमे से कुछ देशो मे हिन्दी का उच्चत्तर अध्ययन तथा शोध-कार्य भी सम्पन्न हो रहा है। अत हिन्दी का जो विश्वजनीन रूप निर्मित हो रहा है, उसे ध्यान मे रख-कर ही हमे अपना मार्गप्रशस्त करना है।

राष्ट्रपति जी को बधाई !

महामहिम राष्ट्रपति श्री ज़ैलसिंह जी ने मैक्सिको तथा अर्जेन्टीना की महत्त्वपूर्ण विदेश यात्रा के दौरान अपने सभी भाषण भारत की राजभाषा हिन्दी में दिए । इससे पहली बार हिन्दी को राजकीय दृष्टि से गौरव नें मिला। महामहिम राष्ट्रपति जी इसके लिए बधाई के पात्र है।

प्रह्लाद का यह अंक

गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र तथा कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अथक परिश्रम कर विश्वविद्यालय को आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने के बाद इसके शैक्षिक परिवेश को भव्य तथा स्तरीय रूप देने का अभियान चलाया। इसके प्रतिष्ठापक के मूल उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए तथा इसकी निजता की रक्षा करते हुए योग केन्द्र, प्रौढ शिक्षा, सेवा प्राप्ति योजना आदर्श ग्राम निर्माण योजना तथा आर्य स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना के साथ शिक्षा-विभागो मे आचार्य तथा प्रवाचको के नये पदो को सरकारी स्वीकृति प्रदान कराने में भी श्री हूजा के योगदान को विस्मृत नही किया जा सकता। उन्ही की प्रेरणा से वैदिक-पथ का अग्रेजी, गुरुकुल-पत्रिका (संस्कृत) तथा प्रह्लाद का हिन्दी मे प्रकाशन हो रहा है।

प्रह्लाद विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या-विषयो का प्रमुख त्रैमासिक शोधपत्र है। विभिन्न क्षेत्रो के समकालीन साहित्य तथा मानविकी के विषयों के अध्ययन तथा शोधकार्य का आकलन करना इसका प्रमुख उद्देश्य है। आशा है, इस कार्य मे हमे विद्वानो का भरपूर सहयोग मिलेगा।

यह अक हिन्दी दिवस पर विशेष रूप से प्रकाशित हो रहा है। इस अवसर पर अधिक से अधिक हिन्दी मे काम काज करने की शपथ लेकर यदि हम हिन्दी की सार्वदेशिकता स्थापित तथा व्यावहारिक स्तर पर प्रमाणित कर सके तो निश्चय ही भाषिक समस्या का अंतिम निदान ढूँढ सकते हैं। हिन्दी मात्र भाषा नही, राष्ट्र की सामाजिक चेतना भी है।

देश की एकता की कड़ी—हिन्दी

पद्मश्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

भारत मूलत संस्कृति प्रधान देश है।. इस देश में अनेक धर्म और भाषाएँ होते हुए भी संस्कृति का ऐसा सूत्र है जो उसे एकता के सूत्र मे पिरोए हुए है। इस एकता के सूत्र की परिपुष्टि करने की दृष्टि से हमारे सतो और सुधारको ने अपने विचारो के प्रचार के लिए जिस भाषा को अपनाया वह काश्मीर से कन्या-कुमारी तक और राजस्थान से सुदूर पूर्वी अचल तक के भूभाग मे समान रूप से बोली और समझी जाने वाली भाषा थी। इस भाषा को हम हिन्दी के नाम से जानते और समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो अतीत काल मे जहा कबीर, गुरुनानक आदि अनेको सतो और सुधारको ने इसे अपने विचारो के प्रचार का साधन बनाया वहा आधुनिक भारत के अनेक सुधारको ने भी इसे पूर्णत अपनाया। ऐसे सुधारको मे राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सैन, जस्टिस शारदाचरण मित्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बाल गगाधर तिलक और महात्मा गाधी प्रभृति महानुभावो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी एकमात्र ऐसी भाषा है जो समस्त भारतीय जनता को एकता के सूत्र मे जोडने वाली कडी का कार्य करती है। चाहे किसी भी प्रदेश का कोई भी व्यक्ति देश के किसी भी भूभाग मे चला जाये तो वह टूटी-फूटी हिन्दी के माध्यम से अपने विचारो को दूसरे व्यक्ति तक पहुचाने मे सफल हो सकता है। दूर क्यो जायें, हम महाराष्ट्र को ही बात आपके सामने रखना चाहते है। छत्रपति शिवाजी की मातृभाषा मराठी थी। उनके सभी दरबारी महाराष्ट्र के थे और प्रजा भी मराठी बोलने वाली ही थी, किन्तु उन्होने हिन्दी के समर्थ कवि भूषण को अपने दरबार मे अत्यन्त सम्मान का स्थान दिया। यदि उनके दरबार मे हिन्दी को समझने और उससे प्रेरणा लेने वाले न होते तो वे ऐसा कदापि न करते। जब वे वेष बदलकर शम्माजी के साथ दिल्ली से दक्षिण लौटे तब उनके विचारो के प्रचार और प्रसार का माध्यम हिन्दी ही थी।

किसी भी भाषा का अधिकाधिक प्रचार तभी हो सकता है जबकि उसके अधिकाश जनसमुदाय की सास्कृतिक गरिमा को उनकी अपनी भाषा मे प्रस्तुत

किया जाये। इसी बात को दृष्टि मे रखकर अंग्रेजो ने हिन्दी को ही अपनाया और ईसाई मिशनरियो ने कलकत्ता के पास सीरामपुर नामक स्थान मे एक हिन्दी प्रेस की स्थापना करके उसके द्वारा प्रचुर परिमाण मे साहित्य प्रकाशित किया। इधर ईसाई मिशनरी जब अपने विचारो का प्रचार हिन्दी मे कर रहे थे तब केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द और नवीनचन्द्र राय जैसे सुधारको ने भी अपने विचारो के प्रचार के लिए हिन्दी को ही अपनाया। यहा यह भी स्मरणीय है कि उक्त तीनो महानुभावो मे से पहले दो बगाली और तीसरे गुजराती थे।

महात्मा गाधी के देश के राष्ट्रीय जागरण मे योगदान देने के साथ-साथ सास्कृतिक एकता की कडी के रूप मे हिन्दी का जो महत्त्व स्थापित हुआ वह भी कम उल्लेखनीय नही। गाधीजी ने अपने विचारो के प्रचार के लिये न केवल हिन्दी को अपनाया बल्कि वे दो बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनो के अध्यक्ष भी रहे। यहाँ तक कि उन्होने राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ देश की एकता के लिए हिन्दी के महत्व को इस सीमा तक अनुभव किया कि उन्होने सुदूर दक्षिण मे मद्रास मे 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना भी की। इस सभा के माध्यम से दक्षिण मे जहाँ स्वाधीनता आन्दोलन के लिए अनेक कार्यकर्त्ता उन्हे मिले वहाँ हिन्दी के प्रचार को भी उन्होने 'राष्ट्रीय एकता' का मूल प्रश्न माना। यही नही उन्होने अपने सुपुत्र श्री देवदास गाधी को भी सर्वप्रथम वहाँ हिन्दी-प्रचारक के रूप मे भेजा।

यह वह समय था जबकि 'हिन्दी' और 'राष्ट्रीय एकता' दोनो शब्द पर्यायवाची से हो गये थे। दोनो को एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता था। हिन्दी की यह परम्परा रही है कि जहाँ उसके अनेक लेखको, कवियो और पत्रकारो ने देश की स्वतन्त्रता और उसके नव-जागरण मे अपना उल्लेखनीय योगदान दिया वहाँ उनके सामने देश की सास्कृतिक एकता का लक्ष्य भी प्रमुख रहा। यह वह समय था जबकि सास्कृतिक और राजनीतिक एकता के इस यज्ञ मे जहाँ हिन्दी-भाषी प्रदेशो के अनेक कवि और साहित्यकार अपना सहयोग दे रहे थे वहाँ दूसरे प्रदेशो मे भी हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण का उद्घोष हो रहा था। इसके साक्ष्य के रूप मे हम हिन्दी के पुराने पत्रकार अमृतलाल चक्रवर्ती और विष्णु सखाराम देउसकर के नाम प्रस्तुत कर सकते है। अमृतलाल चक्रवर्ती बगभाषी होते हुए भी हिन्दी के 'भारत मित्र' का सम्पादन करते थे थे और श्री देउसकर ने मराठी होते हुए भी हिन्दी पत्रकारिता को अपने विचारो के प्रचार का साधन बनाया था। बाद मे तो यह परम्परा और भी तत्परता से आगे बढी और सर्वश्री माधवराव सप्रे, सिद्धनाथ माधव आगरकर, लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबूराम विष्णु पराड़कर तथा रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर जैसे अनेक

महानुभाव मराठीभाषी होते हुए भी हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना उल्लेखनीय स्थान बना गये।

कुछ लोग बंगभाषियो को हिन्दी का विरोधी मानते हैं, लेकिन मेरी ऐसी धारणा नही है। हिन्दी के उन्नयन तथा विकास मे बगभाषियो ने जो भूमिका निबाही उसका हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ यह स्मरणीय है कि सर्वप्रथम हिन्दी पत्रो का प्रकाशन कलकत्ता से ही हुआ और उन पत्रो के संचालक बगभाषी ही थे। 'भारत मित्र' और 'हिन्दी बगवासी' अपने समय मे ऐसे पत्र थे जिनका अवदान राष्ट्रीय जागरण मे बहुत महत्त्व रखता है। यही नही, जस्टिस शारदाचरण मित्र ने तो 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के द्वारा 'देवनागर' नामक एक ऐसा पत्र प्रकाशित करके देश की सास्कृतिक एकता मे उल्लेखनीय योगदान दिया जो देवनागरी लिपि मे सभी भाषाओ की रचनाओ को प्रकाशित करता था।

श्री मित्र ने जहां 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के माध्यम से देवनागरी का प्रचार करने मे एक अग्रणी कार्य किया वहा कालान्तर मे अनेक बगभाषी विद्वानो ने हिन्दी के ऐसे पत्र प्रकाशित किए जिन्होने राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन तथा विकास मे बहुत बडा योगदान दिया है। ऐसे पत्रो मे बगला 'प्रवासी' के सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय द्वारा सचालित 'विशाल भारत' और इण्डियन प्रेस, प्रयाग के सचालक श्री चिंतामणि घोष द्वारा सचालित 'सरस्वती' के नाम प्रमुख है। 'सरस्वती' ने जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी के स्वरूप का निर्माण किया वहाँ 'विशाल भारत' के माध्यम से हिन्दी को अनेक लेखक मिले। हिन्दी के महत्त्व का इससे भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से सचालित उसकी सर्वोच्च परीक्षा 'साहित्य रत्न' जब प्रचलित हुई तब उसके प्रथम वर्ष के परीक्षार्थियो मे श्री नलिनीमोहन सान्याल थे। श्री सान्याल ऐसे बंगभाषी सज्जन हैं जिन्होने न केवल यह परीक्षा ही उत्तीर्ण की बल्कि अपने हिन्दी ज्ञान के अवदान के रूप मे महाकवि सूरदास पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा।

यदि ठडे दिल से विचार किया जाये तो हमे यह मानने मे कदापि कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि हिन्दी ने जहाँ देश की सास्कृतिक एकता की समृद्धि मे अपना अभूतपूर्व योगदान दिया वहाँ वह राष्ट्रीय जागरण की भी सवाहिका रही है। यदि ऐसा न होता तो हमारे अनेक राष्ट्रीय नेता एक स्वर से उसके महत्त्व को क्यो स्वीकार करते। स्व० बालगंगाधर तिलक जहाँ हमारी सांस्कृतिक एकता के संवाहक थे वहाँ उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन मे भी बढ-चढ कर भाग लिया। उनकी यह मान्यता थी कि केवल हिन्दी के माध्यम से ही हम

राष्ट्रीयता का मन्त्र देश के कोने-कोने तक पहुंचा सकते है। यही क्यों उडीसा के गोपबन्धु दास, तमिलनाडु के चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, आध्र के टी० प्रकाशम और असम के श्री गोपीनाथ बरदोलोई भी उन्ही व्यक्तियो में थे जो हिन्दी के माध्यम से भारतीय एकता को महत्त्व देते थे और उनकी दृष्टि में हिन्दी का प्रचार देश की भावात्मक एकता का एक अग था।

इस परिप्रेक्ष्य मे यदि उर्दू के हिमायतियो के उन तर्कों को ध्यान से देखें जो आज उर्दू को एक स्वतन्त्र भाषा का दर्जा देने के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नही, बल्कि वह तो हिन्दी की ही शैली–मात्र है। यदि उर्दू के लिये देवनागरी लिपि का आश्रय ले लिया जाय तो उसका शैलीगत रूप ज्यो का त्यो बना रह सकेगा। उर्दू के हिमायती यह कैसे भूल जाते है कि जिस हिन्दी को जायसी, रहीम, रसखान, आलम, शेख और उसमान जैसे कवियो ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया वह क्या केवल हिन्दुओ की भाषा कही जा सकती है ? खडी बोली हिन्दी के आदिकवि के रूप मे जहाँ अमीर खुसरो ने हिन्दी कविता को नये मुहावरे दिये वहाँ सैयद इन्शाअल्ला खा की 'रानी केतकी की कहानी' नामक रचना से हिन्दी कहानी की विधा मे एक अभूतपूर्व निखार आया। हिन्दी साहित्य मे जहाँ उक्त विभूतियो का विशिष्ट स्थान है वहाँ आधुनिक काल मे भी ऐसे अनेक नाम हमारे समक्ष उभर कर आते है जिन्होने जाति और धर्म की दीवार को लाँघकर साहित्य–निर्माण के क्षेत्र मे अनेक उल्लेखनीय कार्य किये थे। ऐसे महानुभावो मे सैय्यद अमीर अली मीर, कासिम अली साहित्यालकार, जहूरबक्श हिन्दी कोविद, बन्दे अली फातमी, मुन्शी अजमेरी और नबीबक्श फलक आदि के नाम गौरव के साथ स्मरण किये जा सकते है। पिछले तीन दशक मे तो हिन्दी के लेखन मे अनेक ऐसे मुसलमानो का स्मरणीय योगदान रहा है जिनकी रचना साहित्य का श्रृगार कही जा सकती है।

भारत एक-बहुभाषी देश है। इस देश की सभी भाषाओ और लिपियो को अपने-अपने प्रदेशो मे अवश्य बढावा मिलना चाहिए। लेकिन जहाँ तक देश की समग्र एकता का सम्बन्ध है उसके लिए हिन्दी ही एक ऐसा माध्यम हो सकती है जिसके द्वारा हम देश की अखण्डता की रक्षा कर सकते है। स्वतन्त्रता के लगभग ३७ वर्ष बाद आज तो ऐसी स्थिति आ गई है कि हम इससे इन्कार नही कर सकते कि हिन्दी वस्तुत सारे देश की ही भाषा है। आज हिन्दी मे जो लेखन हो रहा है उसमे सभी भाषाओ के लेखको का योगदान है। इसमे जहाँ अनेक तमिल-भाषी महानुभाव अपना योगदान दे रहे है वहाँ केरल, कर्नाटक और आध्र के लेखको की सख्या भी कम नही है। यहां तक कि बगाल और असम मे भी लेखको की ऐसी पीढी तैयार हो गई है जो हिन्दी-भाषी क्षेत्र के लेखको की भाँति ही

सहज और सरल हिन्दी लिखने लगी है। गुजरात और महाराष्ट्र इसके अपवाद कहे जा सकते है। यहाँ के लेखको ने तो अनेक दशको से हिन्दी लेखन को अपना सास्कृतिक धर्म ही समझ लिया था। आज ऐसे अनेक लेखक हिन्दी मे है जिनकी मातृभाषा मराठी और गुजराती है लेकिन उन्हे हम अहिन्दीभाषी हिन्दी लेखक नही कहेगे। सिन्धीभाषी जनता की बात दूसरी है। इनका अपना कोई प्रदेश नही है, देश के प्रत्येक भाग मे यह देखे जा सकते है। लेकिन इतना सब होने हुए भी उनमे भी ऐसे अनेक लेखक है जो मूलत अब हिन्दी मे भी लिखने लगे है। पजाब ने तो हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि मे बहुत बडा योगदान दिया है। आज हिन्दी के ऐसे अनेक लेखक पंजाबीभाषी है जिनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य का शृंगार है। भारत-विभाजन के बाद तो स्थिति यहाँ तक बदल गई कि उर्दू के ऐसे अनेक लेखक हिन्दी मे खुले रूप से छपने लगे जिन्हे हिन्दी भी नही आती। यह भी हिन्दी की लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। वैसे पजाब मे आर्यसमाज का प्रचार होने के कारण हिन्दी का प्रचलन पहले से ही था और यही कारण है कि आज हिन्दी के जितने शीर्षस्थ लेखक है उनमे पजाब का योगदान कम नही कहा जा सकता। सर्वश्री सत्यदेव परिव्राजक, सन्तराम बी०ए०, सुदर्शन, यशपाल अश्क, अज्ञेय और मोहन राकेश पजाब की ही देन है।

सास्कृतिक एकता की कडी के रूप मे हिन्दी की प्रतिष्ठा का इससे अधिक ज्वलन्त प्रमाण क्या हो सकता है कि प्रेमचन्द जैसे लेखक को उर्दू मे लिखना छोडकर हिन्दी को अपनाना पडा। सुदर्शन जैसे हिन्दी कहानीकार भी पहले उर्दू मे ही लिखते थे। बगभाषी हेमन्तकुमारी चौधुरानी ने भी अपनी भाषा को छोडकर हिन्दी मे ही लेखन प्रारम्भ किया था और आज तो यह स्थिति है कि सभी भाषाओ के बोलने वाले हिन्दी को उन्मुक्त मन से अपना रहे है। दूर क्यो जाये, हिन्दी के विरोध की आवाज जहाँ से बराबर उठती रही है उसी नगर मद्रास मे 'चन्दामामा' जैसी पत्रिका प्रकाशित हो रही है, जिसके द्वारा देश के हर कोने के बालक लाभान्वित होते है। हिन्दी को किसी विशेष प्रदेश या अचल की सीमा मे नही बाँधा जा सकता, वह तो हमारी भावात्मक एकता का एक ऐसा सूत्र है जिसको हम अखिल भारतीय प्रतिष्ठा देकर ही सुदृढ बना सकते है।

अजय निवास, दिलशाद कॉलोनी
शाहदरा, दिल्ली ११००३२

हिन्दी-अभियान की रचनात्मक दिशाएँ

डा० हरवंशलाल शर्मा
कुलपति, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय

जहाँ तक हिन्दी के विकास और प्रगति का प्रश्न है, वह निश्चय ही शोचनीय है। क्योकि अब व्यवस्था ने अंग्रेजी लादने की प्रक्रिया उलट दी है। अभी तक हम प्रशासन से अपेक्षा करते थे कि वह जगह-जगह अपने प्रशासनिक सूत्र से हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का कार्य करेगा लेकिन वर्तमान सरकारी नीति से यह सम्भव प्रतीत नही होता। सविधान के प्रावधानो का भो सही-सही पालन नही हो रहा है। सरकार ने जगह-जगह कार्यालयो और सार्वजनिक क्षेत्रो मे हिन्दी अधिकारियो की नियुक्ति और हिन्दी इकाईयो का सगठन तो किया है, किन्तु ये सारी व्यवस्थाएँ निस्तेज और निष्क्रिय हो जाती है, क्योकि इन अधिकारियो की आवाज़ मे कोई बल नही है, तथा जिस नौकरशाही के मातहत उन्हे काम करना पडता है वह अंग्रेजीपरस्त है और हिन्दी की प्रतिष्ठा करना ही नही चाहती। यदि आज यह पूछा जाय कि हिन्दी के विकास की दिशा मे कितनी प्रगति हुई है तो प्रशासन इतने कार्य और आँकडे हमारे सामने प्रस्तुत कर देगा कि देखने मे लगेगा कि वास्तव मे हिन्दी की प्रगति तेज हो रही है जबकि वस्तु-स्थिति यह है कि आज से १५ वर्ष पहले हिन्दी जिस तेज गति के साथ बढ रही थी, आज उतनी ही तेज गति के साथ पीछे खिसक रही है।

हिन्दी के आधुनिकीकरण के नाम पर भी अंग्रेजी को ही बढावा दिया जा रहा है। कम्प्यूटर सिस्टम के माध्यम से आज जितने काम हो रहे है वे सब अंग्रेजी को ही प्रतिष्ठित कर रहे है। मशीनीकरण की इस चकाचौध वाली स्थिति से निपटने के लिए हमको कुछ नये मार्ग निकालने होगे। आज जिस एक-रूपता और एकीकरण तथा आशुलेख और टकण को बहाना बनाकर अंग्रेजी को आगे बढाया जा रहा है वह भयानक है और यदि यह प्रक्रिया तेजी से बढायी गयी तो सरकारी और प्रशासनिक स्तर पर हिन्दी अपने आप हो पीछे खिसक जायेगी और उसका विकास ठप पड जायेगा। यदि वर्तमान प्रशासन ने राजर्षि टडन की सलाह मानकर हिन्दी अको को मान्यता दे दी होती तो आज कम्प्यूटर और मशीनीकरण के माध्यम से जो अंग्रेजी अको का बाहुल्य बढ रहा है वह रुक जाता। राजर्षि टंडन दूरदर्शी थे इसलिए उन्होने इस आने वाले सकट को देख

लिया था। यदि हम उस समय जागते रहते और अंग्रेजी अको के माध्यम से अग्रेजी का प्रचार-प्रसार इतनी तीव्रगति के साथ न बढ पाता। हमे अब इन परिस्थितियो मे हिन्दी अको के लिए भी तीव्र संघर्ष करना चाहिए ताकि प्रकारान्तर से अंग्रेजी का आरोपण रोका जा सके।

अनुवाद के क्षेत्र मे भी हिन्दी की स्थिति चिन्ताजनक है क्योकि साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, एन०सी०ई० आर०टी० तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय एव केन्द्रीय हिन्दी सस्थान आदि जैसी सस्थाएँ केवल निर्धारित (रुटीन) काम ही करती हैं। उनके सयोजन-नियोजन मे न तो राष्ट्रीय दृष्टि दिखलाई पडती है और न वह दूरदर्शिता जिसके माध्यम से भारत की समस्त भाषाओ मे पारस्परिक आदान-प्रदान बढता और हिन्दी को पूर्णरूपेण विकास करने का अवसर मिलता। पिछले बीस वर्षों मे हिन्दी का काम केवल औपचारिकता के स्तर तक ही सीमित रहा है और उसका क्रातिकारी चरित्र दबता जा रहा है। यद्यपि सरकार की यह घोषित नीति है कि कार्यालयो मे जहाँ अंग्रेजी मे लिखना आवश्यक होगा वहाँ अंग्रेजी मसौदे के साथ हिन्दी का अनुवाद भी लगाया जायेगा किन्तु इस औपचारिकता को भी निभाना कठिन हो गया है। आज तो स्थिति यह है कि हिन्दी मे लिखे गये पत्रो के उत्तर भी हमे अंग्रेजी मे ही प्राप्त होते है।

तकनीकी तथा प्रायोगिक विज्ञान, मेडिसिन, वाणिज्य, कृषि तथा इन्जीनियरिंग आदि विषयो मे अभी भी प्रमाणिक ग्रन्थ तैयार नही हो पाये है जिसका परिणाम यह है कि इन क्षेत्रो मे हिन्दी की पहुँच ही नही हो पायी है। इसमे भी सरकार ने यदि दूरदृष्टि से काम लिया होता और हिन्दी की प्रतिष्ठित सस्थाओ द्वारा इस कार्य को कराया होता तो आज इतनी पाठ्य-पुस्तके तैयार हो जाती और प्राविधिक शिक्षण मे काफी प्रगति हो गयी होती। विधि के क्षेत्र मे भी यही विसगति काम कर रही है। पिछले वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने विधि के क्षेत्र मे हिन्दी के प्रयोग और प्रचलन को लेकर एक बृहद् गोष्ठी का द्विदिवसीय आयोजन किया था जिसमे ८, १० उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो, विधि विशेषज्ञो और प्रमुख अधिवक्ताओ ने भाग लिया था। वहाँ भी समस्या यह नही थी कि हिन्दी मे विधि शब्दावली और सवैधानिक मुहावरे नही है, वहाँ प्राय सभी का मत था कि मुकदमो के फैसले और बहस हिन्दी मे इसलिए नही हो पाते क्योकि प्रशासन और न्यायालयो की ओर से हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित नही किया जाता। यदि संवैधानिक स्तर पर प्रशासन द्वारा यह अनिवार्य कर दिया गया होता तो निश्चय ही आज विधि-क्षेत्र मे भी काम काफी आगे बढा होता।

उपर्युक्त बातों की ओर मैंने संकेतमात्र किया है किन्तु हिन्दी के समर्थन का मुखौटा लगाकर हिन्दी की गति को अवरुद्ध करने की कुचेष्टाएँ अवाछनीय है। पिछले कई वर्षों से साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओ द्वारा बोलियो को भाषा का स्थान देकर एक विचित्र प्रकार की संक्रमण की स्थिति पैदा की गयी। डोगरी बोली को साहित्य अकादमी द्वारा स्वतंत्र स्थान देने से भारत और विशेषकर हिन्दी-क्षेत्र की बोलियो को गलत प्रोत्साहन मिला। मैथिल बोली को भाषा का स्तर देकर साहित्य अकादमी ने कई क्षेत्रीय बोलियों को उकसाया है। बिहार मे भोजपुरी अकादमी का संगठन यद्यपि एक सुखद वस्तु है किन्तु भोजपुरी, ब्रज, राजस्थानी आदि को भाषा का स्थान देना अवैज्ञानिक है क्योकि भाषा मूल रूप से धर्म, पुराण, सस्कृति और मिथको की सृजनात्मक अभिव्यक्ति से बनती है और सकी विश्वजनीन चेतना होती है। बोलियाँ एक समृद्ध भाषा की अनेक इकाइयो के रूप मे कार्य करती हैं और उसके सम्पूर्ण स्वरूप को बनाने-सवारने और समृद्ध करने मे योग देती है। हिन्दी जगत् की भावुकता के आधार पर बोलियो को भाषा का रूप नही देना चाहिए किन्तु उन बोलियो के विकास को अवरुद्ध भी नही करना चाहिए क्योकि जितनी समृद्ध बोलियाँ होगी उतनी ही सशक्त भाषा भी होगी। स्वयं बोलियो के विकास के लिए आवश्यक है कि भाषा की समृद्धता बनी रहे। हमे आशा है कि भाषा के इस जटिल पक्ष पर पुन विचार होगा। साहित्य अकादमी जैसी अनेक संस्थाएँ है जो सरकारी और अर्द्ध-सरकारी स्तर पर इस प्रकार का विष बो रही है। इस प्रवृत्ति को समूल नष्ट करने के लिए हमे एक कदम उठाना चाहिए।

अभी मैने नागरी अको के विषय मे कहा। आज नागरी लिपि के महत्त्व और उसकी उपयोगिता को नकारने की प्रवृत्ति बढ रही है। वस्तुस्थिति यह है कि सार्वजनिक और प्रशासनिक स्तर पर भारत की विभिन्न भाषाओ के आदान-प्रदान के लिए हमे विशेष प्रयास करना चाहिए। वस्तुत. आज भारत की समस्त भाषाओ मे लिपि-भेद होने के कारण ही भाषा-भेद की विषमता बढी है। यदि स्वर्गीय गाधी और श्रद्धेय टण्डन जी की बात मानकर देश मे प्रशासनिक और सार्वजनिक स्तर पर विभिन्न भाषाओ के साहित्य को मात्र नागरीलिपि मे लिपिबद्ध कर दिया जाता तो भाषा की दूरी और पारस्परिक अजनबीपन समाप्त हो जाता। वस्तुत भारत की समस्त भाषाओ की जड़े संस्कृत भाषा मे है, उनकी समस्त सस्कारिता भी एक ही धर्म, पुराण, मिथक और लोकतत्त्वो पर आधारित है। राम, कृष्ण, शिव, गगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी—इन सबका उल्लेख समान रूप से मिलता है। महत्त्वपूर्ण पुस्तको के अनुवाद और उनके नागरीलिपि मे प्रकाशन से ये दूरियाँ समाप्त हो सकती थी। खेद है कि समय रहते हमने इसको कार्यान्वित नही किया। यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने नागरीलिपि मे ही

तेलगु, कन्नड और तमिल आदि कई भाषाओ के कोश संकलित कराये हैं फिर भी मात्र इतना ही पर्याप्त नही है। सरकार को चाहिए कि विशेष अनुदान देकर इस दिशा मे योजनाबद्ध रूप मे लम्बी स्कीम बनाये और केवल कोश ही नही, इन भाषाओ के साहित्य को भी अनूदित, रूपान्तरित और नागरीलिपि मे मुद्रित कराये और देश के समस्त पुस्तकालयो मे विशेष कक्ष स्थापित करके सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय को सुलभ कराने की चेष्टा करे, क्योकि जब भारतीय भाषाओ का नैकट्य स्थापित होगा तब वह साहित्य और सांस्कृतिक वातावरण पैदा होगा जो अपनी देशीय अस्मिता के लिए आतुर होगा और यह आतुरता ही अंग्रेजी को समाप्त करके हिन्दी को प्रतिष्ठित करने मे सहायक होगी।

इसी सन्दर्भ मे उर्दू के विषय मे भी चर्चा कर देना अप्रासगिक न होगा। यह बड़े दु ख का विषय है कि उर्दू को देश के राजनैतिक दल केवल अपने निहित स्वार्थ के लिए समय-समय पर इस्तेमाल करते रहे है। मै स्वय उर्दू का प्रबल समर्थक हूँ क्योकि मै यह मानता हूँ कि उर्दू हिन्दी की एक शैली है और वह उसी मिट्टी से पैदा हुई है जिससे सूरदास, तुलसीदास, अष्टछाप के कवि, बिहारी, और पद्माकर ने जन्म लिया। यदि हमारी सास्कृतिक दृष्टि सही होती और भारतीय अल्पसंख्यको को अंग्रेजो और निहित स्वार्थ वालो ने गुमराह न किया होता, तो उर्दू को लेकर यह विषमता पैदा न हुई होती। मीर तकी 'मीर' की भाषा को हिन्दी के सिवाय और कुछ कहा नही जा सकता। गालिब का पूरा दीवान हिन्दी भाषा और मुहावरो से भरा हुआ है। अनीस के मर्सिये नितान्त भारतीय वातावरण को चित्रित करते है। ऐसा लगता ही नही कि जैसे हसन-हुसेन, जैनब और हज़रत अली इस देश के नही, विदेश के है। नजीर अकबराबादी के नज्मो मे हिन्दू-प्रतीको, त्यौहारो, समारोहो और धार्मिक चरित्रो का जो चित्रण प्रस्तुत किया गया है उस पर हमे गर्व है। हमे इस पूरे साहित्य को नागरीलिपि मे प्रकाशित करके उपलब्ध कराना चाहिए और इस बात का आन्दोलन करना चाहिए कि मात्र फारसी लिपि मे लिखे जाने से उर्दू हिन्दी से अलग नही की जानी चाहिए। साथ ही यह कि उर्दू को नागरी लिपि मे लिखने और प्रकाशित करने का आन्दोलन तीव्र करना चाहिए। उर्दू हिन्दी को समृद्ध करने वाली है।

जिस प्रकार उर्दू को राजनैतिक समस्या बनाकर देश के जन-मानस के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है, ठीक उसी प्रकार अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतीक-स्वरूप अंग्रेजी स्कूलो और कॉन्वेण्ट स्कूलो द्वारा भी हमारे देश के शिशुओ को अपने ही देश मे अजनबी बनाने का षड्यन्त्र चल रहा है। आजादी के पहले अंग्रेजो की औपनिवेशिक नीति के अन्तर्गत जो विष बोया गया था वह आज स्वतन्त्रता के ३६ वर्ष बाद अपने विषाक्त रूप मे पनप रहा है। इन कॉन्वेण्ट

स्कूलों मे देश की सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि के विरुद्ध नितान्त विदेशी, मूल्यहीन और विसंगतिपूर्ण शिक्षा दी जा रही है। यह सब सम्भव इसलिए हो रहा है, क्योकि देश का सम्पन्न वर्ग उन स्कूलो मे बच्चो को पढाना अपनी प्रतिष्ठा का प्रतीक मानता है और प्रशासन भी परोक्ष रूप से उनको प्रोत्साहन देता है। आज जिस तर्क के अन्तर्गत ये प्रशिक्षण सस्थाएँ चल रही है वह नितान्त घातक है। इन सस्थाओ का कहना यह है कि चूँकि ये सस्थाएँ बिना सरकार से अनुदान लिये प्रशिक्षण करती है और साथ ही अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा सचालित है, इसलिए प्रशासन को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहा है। स्वयं सरकार भी यह कहकर कि ये सस्थाएँ अल्पसख्यको द्वारा सचालित है, हस्तक्षेप नही करती। किन्तु ये दोनो तर्क असगत है। देश मे कौन–सी शिक्षा-पद्धति लागू होगी, किस प्रकार की शिक्षा दी जायगी, उनका विषय-सन्दर्भ तथा पाठ्यक्रम आदि क्या होगा, इसको राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित होना चाि्ए और पूरे देश मे, चाहे वे सरकारी प्रशिक्षण संस्थाएँ हो या सार्वजनिक, उनमे आधारभूत सास्कृतिक और सामाजिक एकरूपता होनी चाहिए। सरकार को यह देखना चाहिये कि प्रशिक्षण में इस एकरूपता का निर्वाह हो रहा है या नही और यदि नही हो रहा है तो इन शैक्षणिक सस्थाओ को समाप्त कर देना चाहिए। यह दु.ख की बात है कि जान-बूझकर या अनजाने सरकार इस आधारभूत नीति की उपेक्षा करके अपनी गलत उदारता की दुहाई देती है। सम्प्रति हम सिवाय शाब्दिक विरोध के और कर ही क्या सकते है। फिलहाल यदि ये कॉन्वेण्ट स्कूल वैकल्पिक रूप मे हिन्दी के माध्यम से पठन-पाठन की सुविधा विद्यार्थियो को प्रदान करे तो सम्भव है कि यह पनपता हुआ विष कुछ कम हो। इसलिए मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस मञ्च से यह माँग करता हूँ कि कॉन्वेण्ट स्कूलो को तत्काल ही हिन्दी को वैकल्पिक रूप मं अध्ययन करने की छूट देनी चाहिए तथा हिन्दी के माध्यम से भी परीक्षाओ को आयोजित करके अपनी सदाशयता का प्रमाण देना चाहिए। साथ ही पाठ्यक्रम मे भारतीय सस्कृति के मूल्यो का समावेश होना चाहिए।

कॉन्वेण्ट स्कूलो की पढाई की चर्चा मैने यो ही नही की। वस्तुत इन स्कूलो का सीधा प्रभाव देश मे होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओ पर पडता है। कॉन्वेण्ट स्कूलो से निकले हुए विद्यार्थियो को अग्रेजी माध्यम से शिक्षित होने के नाते यह सुगमता रहती है कि वे इन प्रतियोगी परीक्षाओ मे अपनी निपुणता दिखा सके। यद्यपि केन्द्रीय सरकार ने और प्रादेशिक सरकारो ने हिन्दी को एक विषय के रूप मे स्वीकार किया है, कही-कही उसे माध्यम के रूप मे स्वीकार किया गया है, किन्तु यह व्यवस्था मात्र औपचारिक है। जबकि आवश्यकता है एक सुदृढ नीति की। विषय-ज्ञान अर्जित नही किया जाता और सभी प्रश्न-पत्र और उनके उत्तर भी अनिवार्यत जब तक हिन्दी मे नही होगे, तब तक मात्र हिन्दी को एक

विषय के रूप में स्वीकार करने से उचित फल नही मिलेगा। इसलिए प्रतियोगी परीक्षाओ मे हिन्दी को माध्यम के रूप मे स्वीकार करना उतना ही आवश्यक है जितना कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता के लिए सविधान मे उल्लिखित नैसर्गिक अधिकार।

यह खेद की बात है कि स्वतत्रता के ३६ वर्ष बाद भी हमारे विदेश मत्रालयो मे व्यवहार की भाषा अग्रेजी ही बनी हुई है। सवैधानिक रूप से हिन्दी को जो स्थान प्राप्त है उसके अनुसार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का ही प्रयोग होना चाहिए। किन्तु हीन भावनाओ से ग्रस्त हमारे भारतीय आफिसर्स और विदेश मंत्रालय आज भी अग्रेजी के प्रयोग को जारी रखे हुए हैं। दूसरे शब्दो मे, राष्ट्रभाषा होते हुए भी हम विदेशो में विदेशी भाषा का प्रयोग करके अपने अराष्ट्रीय आचार-विचार का ही पालन करते है। सयुक्तराष्ट्र सघ मे हिन्दी का अपना पद प्राप्त न कर सकना और अग्रेजी माध्यम से वहाँ अपना काम चलाना नितान्त अपमानजनक है। इसलिए हम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मञ्च से सरकार से माँग करते है कि शीघ्रातिशीघ्र विदेश मन्त्रालयो मे हिन्दी माध्यम से काम प्रारम्भ किया जाए और सक्रिय रूप से हिन्दी को सयुक्तराष्ट्र सघ की कार्यालयीय भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया जाए।

जतनी शक्ति के साथ हमे काम करना चाहिए था, हमने नही किया। पिछले ३७ वर्षों की अवधि में हमे देश के भीतर हिन्दी के माध्यम से काय-व्यापार करने मे सक्षम होना चाहिए था। थोडी देर के लिए हम यह मान भी ले कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस तीव्र गति से हिन्दी को प्रतिष्ठित होना चाहिए था वह सम्भव नही हो पाया क्योकि उसमे प्रशासन का हाथ था। किन्तु हम सार्वजनिक जीवन मे हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने मे असफल रहे, यह हमारी अपनी अक्षमता का परिचायक है। यह दु ख की बात है कि उद्योग-व्यापारादि के क्षेत्र मे हिन्दी पूर्णरूपेण प्रविष्ट नही हो पायी है। हमे इस दिशा मे एक ठोस कार्यक्रम बनाकर कार्यशील होना चाहिए और अल्प समय मे ही उद्योग-व्यापार के क्षेत्र मे हिन्दी का प्रयोग बढाने मे योग देना चाहिए। इस दिशा मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने पिछले एक वर्ष मे कुछ ठोस कदम उठाये है। विधि-क्षेत्र मे हिन्दी के प्रयोग की समस्याओ को लेकर हमने एक बृहद् आयोजन किया था जिसके कुछ महत्त्वपूर्ण नतीजे भी निकले है। इसी क्रम मे उद्योग-व्यापार मे एक बृहद् गोष्ठी शीघ्र ही आयोजित की जाने वाली है और हमारा विश्वास है कि इस गोष्ठी से भी सार्वजनिक जीवन मे हिन्दी के प्रचार-प्रसार मे विशेष प्रेरणा मिलेगी। मैं हिन्दी की सार्वजनिक सस्थाओ से यह अपील करता हूँ कि वे अपने-अपने क्षेत्र मे व्यापारियो, नागरिको, बुद्धिजीवियो और उद्योगपतियो की सभाएँ बुलाकर इस आन्दोलन को गति प्रदान करे।

हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के विषय पर भी यहाँ चर्चा करना आवश्यक है, क्योकि हिन्दी को सविधान मे जो स्थान प्राप्त है उसको मिटाने के लिए कुछ तत्त्व क्रियाशील है। हमारी कमजोर राष्ट्रीय नीति के कारण सविधान मे कुछ ऐसे सशोधन हो गये है, जिनके कारण हिन्दी को अपना नैतिक पद प्राप्त करने मे कठिनाई हो रही है। यह बडे दु ख का विषय है कि हमारे राजनीतिज्ञो ने संविधान मे संशोधन करके भाषा अधिनियम मे यह जोड दिया है कि यदि देश का कोई भी भाग अग्रेजी के हटाये जाने का विरोध करेगा, तो अग्रेजी तब तक बनी रहेगी जब तक वह अल्पमत भी अग्रेजी हटाये जाने का समर्थन न करे। यह स्वीकृति अपने आप मे ही विडम्बनापूर्ण है, क्योकि यह अल्पमत द्वारा बहुमत का गला दबाना है। देश की षड्यन्त्रकारी स्थितियाँ इतनी सशक्त है कि वे देश मे कभी भी ऐसी स्थिति आने ही नही देगी जिससे पूरा देश सर्वसम्मत रूप से अंग्रेजी का मोह त्याग सके। वस्तुत यह बहुमत को अल्पमत मे बदलने का कुकृत्य है। इसलिए हमारे देश के विधिवेत्ताओ एव विद्वानो को कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहिए जिससे अल्पमत का यह कुचक्र समाप्त हो सके और हम इस विडम्बनापूर्ण स्थिति से मुक्ति पा सके। इस नीति से हिन्दीतर भाषाओ का समुचित विकास भी सम्भव नही है। वास्तव मे सभी भाषाओ के विकास से ही हिन्दी का सामासिक रूप विकसित होगा।

सवैधानिक स्तर पर एक और भी समस्या उठ खडी हुई है और वह यह है कि शिक्षा के स्तर पर कही शिक्षा के क्षेत्र मे द्वि-भाषा फार्मूला है और कही त्रि-भाषा फार्मूला। विडम्बना तो यह है कि त्रि-भाषा फार्मूला से भी शिक्षा की एकरूपता नष्ट हो रही है और प्रकारान्तर से अग्रेजी प्रतिष्ठित हो रही है। इसी का यह परिणाम है कि तमिलनाडु और दक्षिण के अन्य प्रदेशो मे त्रि-भाषा फार्मूला के आधार पर अग्रेजी दूसरी भाषाओ का गला दवाकर हावी है। वस्तुत त्रिभाषा फार्मूला के आधार पर नीति-निर्धारण होना चाहिए और हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषा को अनिवार्य करके देश की किसी अन्य भाषा को विकल्प के रूप मे लेने की सुविधा होनी चाहिए। हम महाराष्ट्र सरकार के आभारी है कि उसने अपने प्रदेश मे हिन्दी को अनिवार्य बनाकर एक समाधान प्रस्तुत किया है। अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रो मे इसका जितना ही अनुकरण किया जायगा उतना ही श्रेयस्कर होगा। सवैधानिक सन्दर्भ मे अरुणाँचल और मिजोरम मे जो अग्रेजी को प्रमुखता प्रदान की गयी है वह घातक है, क्योकि अरुणाँचल, मिजोरम और नागालैण्ड की भाषाएँ पूर्णतया विकसित और सुसस्कृत हैं। अंग्रेजी को प्रधानता देने मे वहाँ की क्षेत्रीय भाषाओ का हनन हो रहा है। उसे रोकना नितान्त आवश्यक है। मै समझता हूँ कि इस दिशा मे देश की सार्वजनिक सस्थाओ और प्रतिष्ठानो को एकमत से विरोध करना चाहिये तथा इस अभिशाप से उन प्रदेशो को मुक्त

करके उनको अपना स्वाभिमान और उनकी अपनी स्वायत्तता वापस देनी चाहिए।

मैंने अभी तक हिन्दी भाषा और उससे सम्बद्ध अनेक समस्याओ की ओर ध्यान आकृष्ट कराया और जगह-जगह आन्दोलन आदि को रेखांकित किया है। ऐसी स्थिति मे पूछा जा सकता है कि हिन्दी के सर्वव्यापी प्रयोग के लिए, देश के सभी क्षेत्रो और वर्गों मे प्रेम उत्पन्न करने के लिए क्या करणीय कार्य है ? आप स्वय इसका उत्तर देने मे समर्थ है। सामान्यत यह कहना तो सरल है कि हमे अपने कार्य-व्यापार में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए किन्तु मात्र इतने से ही हिन्दी आन्दोलन या हिन्दी का प्रचलन और प्रयोग आगे नही बढ पायेगा। इसके लिए आवश्यक है कि—

१. आप स्वयं अपने निजी कार्य मे हिन्दी का अधिक-से-अधिक प्रयोग करे। वैयक्तिक पत्र से लेकर बैंक-व्यापार आदि मे भी हिन्दी ही को माध्यम के रूप मे स्वीकारे।

२ दूसरा कार्य यह है कि आप जिस विषय के विशेषज्ञ हो, उसमे ग्रंथो की रचना करके प्रकाशित करे, क्योकि सामान्य पत्र तो सभी लिख-पढ सकते है, किन्तु वैज्ञानिक और तकनीकी विषयो पर विशेषज्ञ ही लिख सकते है। इसलिए विशेषज्ञो की इस दिशा मे विशेष जिम्मेदारी है।

३. जो विसगतियाँ प्रशासनिक, सवैधानिक आदि कारणो से पैदा हुई है, उनके विरुद्ध प्रबल जन-मत तैयार करे, ताकि बहुत-सी सवैधानिक अडचनो का जनतात्रिक हल लोकमत के आधार पर निकल सके।

४. जहाँ कही भी हमे हिन्दी को प्रयोग मे लाने का विकल्प प्राप्त हो, वहाँ उसका प्रयोग करे और अग्रेजी की वरीयता को समाप्त करने मे अपना योगदान दे।

५. कॉन्वेण्ट स्कूलो का तब तक बहिष्कार करे जब तक कि उन स्कूलो मे हिन्दी को वैकल्पिक स्थान प्राप्त न हो।

६ नागरीलिपि और नागरी अक को प्रयोग मे लाने के लिए सशक्त आन्दोलन चलाये।

७ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान मे स्थापित विभिन्न समितियों से सहयोग प्राप्त करके विधि-क्षेत्र, उद्योग-व्यापार-क्षेत्र, शिक्षा-क्षेत्र मे जो निर्णय लिये गये हैं, उनको कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नशील हो।

८. क्षेत्रीय भाषाओ और संस्कृतियो के प्रति उदार होकर उनकी प्रतिभाओ और विशेषताओ को राष्ट्रीय-स्तर पर स्थापित करने की चेष्टा करें।

९. सरकारी और सार्वजनिक-स्तर पर ऐसी अनेक पत्रिकाएँ निकलनी चाहिएँ जिससे विभिन्न क्षेत्रो और भाषाओ का विस्तृत परिचय और अध्ययन करके, विचारो का पारस्परिक आदान-प्रदान सभव हो सके।

१० हिन्दी भाषाभाषियो को दक्षिण की किसी न किसी एक भाषा को अनिवार्यत सीखना चाहिए ताकि अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्र के लोगो को विश्वास का आश्वासन मिले और सन्देह की भावना नष्ट हो।

द्वितीय राजभाषा उर्दू कैसी होगी ?

पद्मभूषण डा० श्रीनारायण चतुर्वेदी

उर्दू के स्वरूप के बारे मे सामान्य लोग ही नही हिन्दी के बहुत से विद्वानो को भी भ्रम है। वे समझते है कि सिनेमा मे या लखनऊ आदि बडे नगरो मे जो बोली समाज के एक विशेष स्तर मे बोली जाती है, जिसमे बीच-बीच मे कुछ चलते हुए फारसी के वे शब्द आ जाते हैं, जिनसे वे परिचित है, वही उर्दू है और उसी को द्वितीय राजभाषा बनाने की माँग की जा रही है। हिन्दी के अनेक साहित्यकार उर्दू नही पढते। वे यह कह कर सतोष कर लेते है कि उर्दू तो हिन्दी की एक शैली है। उनकी यह गलत धारणा है कि यदि वह देवनागरी लिपि मे लिखी जाये तो वे उसे समझ लेगे। उन्हे यह नही मालूम कि आज उर्दू वाले जिसे उर्दू कहते है, उसका रूप हिन्दी से कितना भिन्न है, या उसका कितना अधिक फ़ारसीकरण हो गया है। वह हिन्दी से कितनी दूर चली गई है। बहुवचन बनाने आदि मे वह फ़ारसी और अरबी के व्याकरण से नियत्रित होती है। जैसे उसमे 'वकील' का बहुवचन "वकीलो" न होकर "वकला" होता है। जिस उर्दू की माँग की जा रही है वह फारसी से बोझिल है, उसके व्याकरण से बहुत कुछ नियत्रित है। उसमे उपमा, अलकार, सदर्भ फ़ारसी साहित्य या मध्यपूर्व एशिया के है। उसका आधार फारसी और मध्यपूर्व एशिया की सस्कृति है। उसमे भारतीय संस्कृति नाममात्र को है। वही उर्दू आज उर्दू लेखको, भाषण देने वालो और उर्दू का प्रचार करने वालो की निगाह मे उर्दू है। उसी उर्दू को राज-भाषा बनाने की माँग की जा रही है। यह भी शर्त है कि वह विदेशी फारसी लिपि मे लिखी जाये। राज्य की जनता और हिन्दी के उक्त विद्वानो और सामान्य हिन्दी-शिक्षित लोगो की जानकारी के लिए आज की उर्दू के कुछ नमूने दिये जा रहे है। ये नमूने समाचार-पत्रो, कहानियो, उपन्यासो, उर्दू विद्वानो के लेखो और पुस्तको से लिये गये है। इन्हे उन पत्र-पत्रिकाओ और उर्दू के उन मान्य लेखको की पुस्तको मे लिया गया है जो सहज मे मिल गयी। इन्हे किसी क्रम मे छाँटा नही गया। उर्दू की जो पुस्तक या पत्र हाथ लगा उसे खोलने पर जो अश सामने आ गया, वही लिख लिया गया है। कविता चुनने मे ध्यान रखा गया है कि प्रसिद्ध हिन्दू-मुसलमान उर्दू कवियो की कविताओ से कुछ पक्तियाँ दे दी जायें।

समाचारपत्रों, कहानियों और उपन्यासो में सभी लेखक भरसक सरल भाषा का प्रयोग करते हैं क्योंकि इन्हें विद्वान ही नहीं, कम शिक्षित लोग भी पढते हैं। पहले सरल उर्दू के नमूने, फिर विद्वानो की कविता और 'स्टैण्डर्ड' उर्दू गद्य के नमूने देखिये।

उर्दू समाचारपत्रो के शीर्षको की भाषा के उदाहरण—

१. हुकूमत मज़दूरो के हुकूक़ ग़सब कर रही है।

—सियासत जदीद, २६-२-८२

२. अम्न के नाम पर इश्तेआल फैलाने की दिल-आज़ार कोशिशें।

—ब्लिट्ज़ उर्दू, २७-२-८२

३. हिज़्बे मुखालिफ़ के इत्तेहाद के इम्कानात मादूम। जाब्ता कमेटी तोड दी गई।

—कौमी आवाज़, २४-२-८२

उर्दू समाचारो की भाषा के कुछ नमूने—

लोक दल के तीन पार्टियो के तालमेल के तोड देने के एकतर्फ़ा फ़ैसले ने हिज़्बे मुखालिफ के इत्तेहाद के इम्कानात मज़ीद मादूम हो गये हैं।

—कौमी आवाज़, २४-२-८२

मोआहदये शिम्ला के ज़रिये दोनों मुमलिकत ने बाहम जग न करने का अहेद कर लिया है। नाजग मोआहदे की तजवीज़ हिन्दोस्तान के अफसर व खयालात का आईना है।

—कौमी आवाज़, २७-२-८२

नई देहली—२५ फर्वरी आज लोकसभा मे ··· हुकूमत की तरफ से मजदूरो के खिलाफ़ किये जाने वाले मोअयना सख्त इकदामात पर एहतेजाज करते हुए हिज़्बे मुखालिफ से तआल्लुक रखने वाले अराकीन बडी तादाद मे एवान से वाकआउट कर गये।

—सियासत जदीद, २६-२-८२

कलकत्ते की अम्न की फ़ज़ा की परागदा करने की कोशिशे की गयी लेकिन शुक्र है जिसे बांया बाज़ू हुकूमत ने बर वक्त मुदाखलत करके नाकाम कर दिया।

ब्लिट्ज़ उर्दू एडीशन, २७-२-८२

यूनिवर्सिटियों अर्बाबे कमाल को ऐसी डिग्रियां देकर अपने वज़न व वकार में इज़ाफ़ा करती है। कश्मीर यूनीवर्सिटी को हम मुबारकबाद पेश करते है कि

इल्म व फन के एक सीमुर्ग के एक हुमा और खुशकलामी व शेवा बयानी के एक अन्दलीब को अपने हल्के मे लेकर अपनी तौकीर बढाई वर्ना मौलानाये मुहतरम के रुत्बे का शहबाज् एक ऐसे सदत्तुलमुंतहा पर बैठ चुका है जहाँ इनको किसी कल्गी की जरूरत नही ख्वाह वह कैसी ही ज़र्रीं और मुकल्लल हो ।

—"मुआरिफ" १६८१ (गुजरात)

मज़हब की तबदीली के हालिया वाक़यात का तआल्लुक अक़ायद से नही है । यह वाक़यात समाज के खिलाफ एक बग़ावत की हैसियत रखते है और इस बग़ावत को रोकने के लिये इसके अस्बाब को खत्म करना होगा ।

—कौमी आवाज़ एडीटोरियल, २४-२-८२

अब कहानियों और उपन्यासों की भाषा के नमूने देखिये—

शाहीन खूबसूरती से ज़्यादा ज़ेहानत के लेहाज से दिलचस्पी की मुस्तहक़ थी । वह होनहार, हँसमुख, हाज़िरजवाब और बहुत ज़्यादा जिद्दतपसन्द थी । हर नई चीज पर मिटना उसकी फितरत में शामिल था । वह नये अन्दाज़ से अपने को सवारना पंसद करती थी । मश्रिकी माहौल मे जहाँ लम्बे बालो को ही खूबसूरती खयाल किया जाता है उसने बाल कटवाने का जुरअतमदाना एक़दाम किया । तान व तशनीअ की क़तई परवाह नही की ।

—नया दौर, दिसम्बर १६८१

मियां 'आज़ाद' जब घर से निकले गिरगिट की तरह रंग बदलते रहे । कभी दर्वेश शेखूखत पनाह, वली अल्लाह, आरिफ-ब-अल्लाह, हक़ अगाह, मशी-खत दस्तगाह, कभी जुरआ-नोश, मगबचे बादा फरोश, रिन्दे आशाम, सुबह को शराब, शाम को जाम, कभी पहलवान कभी फिकैत बन गये ।

—फ़सानैय आज़ाद

कमलादेवी अलाउद्दीन का शुक्रिया अदा करते हुए कहती है— "नही हुज़ूर मैं कुफ़राने नेमत नही कर सकती । मगर यहाँ महाराज का शुक्रिया अदा करने की जरूर जुरअत करती मगर मेरी खुश्क जबान, मेरे परेशान हवास और उर्दू जबान से मेरी नावाकिफ़यत मुझको जबान खोलने की इजाज़त नही देती ।"

मोहम्मद अली तबीब-खिज़्रखाँ देवलदेवी

"काले खाँ की कुर्बानी अमरकान्त की जिंदगी का शीराज़ा बन गई । इसमे तड़पन न थी, बेकरारी न थी, इस्तेहकाम न था, फ़ोरी तग़युरात के झोंके इसके वर्क़ों को परेशान करते रहते थे । इस शीराज़े ने इसमे तवाज़ुन और दिली मुतावक़त पैदा कर दी ।"

—मुंशी प्रेमचन्द – मैदान अमली

अब सामान्य उर्दू गद्य साहित्य के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

अदब खयाल और ज़बान की एक ऐसी तखलीकी इकाई का नाम है जिससे मसर्रत के साथ बसीरत हासिल होती है। अदब में जमालियाती कैफ़ीयत ज़ज्बाती और तखलीकी अन्सर की आमेज़िश से पैदा होती है और इसका इज़हार ज़बान की मजाज़ी शक्लो यानी तश्बीह, इस्त्यारा, पैकर, अलामत, कनाया, मजाज, रसल और दूसरे तखलीकी रिश्तो के ज़रिये ज़ाहिर होता है।

'शायर' उर्दू के मुकतदर जरीदों मे से एक हैं। इसे उर्दू तहज़ीब नुमायन्दा कहना गलत न होगा। 'शायर' उर्दू अदब की खिदमत और तरक्की व तर्बीज की एक रवायत का नाम है जिसकी इब्तदा १९३० मे हुई। यह एक अदब-आफी जरीदा है जिसके इजराअ के बाद से इसने न सिर्फ आला व सेहतमद अदब शाया किया बल्कि शायरो और अदीबो की मुतअद्दद नस्लो की तरबीयत व तरक़की में मुवानत की। आगाज 'शायर' से किया।

—'आजकल', दिसम्बर १९९१ 'कु वरसेन'

—रिवियु माहनामा 'शायर' खास नम्बर १९९०

'शेफ़ता' ने जिन शोअरा की तारीफ़ की है इनमे से वेश्तर वही है जिनकी तारीफ़ आज तक तमाम सुखन-संज व सुखन-फ़हम नक्काद करते चले आये है लेकिन बाज की तारीफ के सिल्सिले मे 'शेफ़ता' ने जो सीगे अफज़ल-उल्-मुतफ़जल के इस्तेमाल किये हैं वह उनके हरीफों के लिये तो सकील थे ही लेकिन ऐसा मालूम होता है कि खुद इनके मम्दूहीन को भी इसका एहसास हो गया था कि "रकाब किर्ज़ उल्सलान की बोसा-देही के लिये कुर्सीएनुह-फ़लक ज़ेर पाये अन्देशा" रख दी गई है।

(खादिल हुसेन 'कादरी')

—मआरिफ, फरवरी १९८२

मुतअद्दद मख्सूत व जखतूतो का कमाहक़ा पढना भी कोई आसान काम नहीं। अहले-जबान को भी इससे ओहदा-बरआ होना मुश्किल है चेजाये कि किसी मग्रिबी से यह तबक्को की जाय कि वह हर्फ़न-हर्फ़न इसे पढकर इस करार-वाकई तौर पर इस्तेखराज़ व इस्बिसात कर सकेगा।

(खालिद हुसेन 'कादरी')

—मआरिफ, फरवरी १९८२

उर्दू साहित्य और काव्य के कुछ नमूने—

करता है तो तै सवादनामा यूँ हर्फ़ है नक्श पाये खामा
यह दामने दश्ते शौक का खार यानी ताजउलमुलूक दिल जार

एक जंगले में जा पड़ा जहाँ गर्द सैहराय अदम भी था जहाँ गर्द
(गुलज़ार नसीम—पं० दयाशंकर कौल)

गुमां आबाद हस्ती में यकी़ मर्दे मुसलमा का
बयाबां की शबे तारीक मे कंदील रहबानी
मिटाया क़ैसरो कसरा के इस्तिब्दाद को जिसने
वह क्या था ज़ोर हैदर, फ़ुक्रे बूज़र, सिद्के सलमानी ॥
- इक़बाल

गुबार आलूदए रंगो नसब है बालो पर तेरे
तु ऐ मुर्गे हरम उड़ने से पहले पर-फ़िशां होजा
ख़ुदी में डूब जा गाफ़िल यह सर्रे ज़िन्दगानी है
निकल कर हल्क़ए शामो सहर से जाविदाँ होजा ॥
—इक़बाल

इसमे खूबी सी कुछ आईने मुकाफ़ात की थी
कुछ जुनूंखेज बग़ावत सी भी जज़्बात की थी
इक फ़सूं-साज़ शरारत सी कुछ रात की थी
वर्ना उसको न मुझीको खबर इस बात की थी
कि यह रात मुक़द्दर में मुलाकात की थी
ठडी क़ाफ़ी —आनन्द नरायन 'मुल्ला'

'रामायन का एक सीन'

रुख़सत हुआ वह बाप से लेकर खुदा का नाम
राहे वफ़ा की मंज़िले अव्वल हुआ तमाम
मजूर था जो माँ की जियारत का एहतमाम
आँखो से अश्क पोछ के दिल से किया कलाम
आखिर है कुछ हद्दे सितमो ज़ुल्मो और भी
हमको उदास देख के ग़म होगा और भी
ऐ ख़ाके हिन्द तेरी अज़्मत मे क्या गुमा है
दरयाए फ़ैज़े कुदरत तेरे लिये रवा है।
तेरी जबी से नूरे हुस्ने अज़ल अयाँ है
अल्लाह रे ज़ेबो ज़ीनत क्या औजे इज्ज़ोशां है
हर सुबह है यह ख़िदमत ख़ुर्शेद पुर ज़िया की
किर्नों से गूँधता है चोटी हिमालिया की
—बृज नरायन 'चकबस्त' लखनवी

तोड़ी कलाई जुल्म की जिन्दाँ के दर खुले
जंजीर कट के गिर गई बाबे असर खुले
बरसों के बाद बुत-शिकन ओ हकनिगार खुले
थे जिसकी आरजू में वह राजे सहर खुले
खुशबू घुली फजाओ मे दिल शाद हो गये
गुलशन के फूल कैद से आजाद हो गये

वह बन्देमातरम की सदा वह सभों का जोश
टकरा गये पहाड से गाजी व सरफरोश
हैरत से देखती रही दुनिया अलम बदोश
एक मर्दे बावफा का वह अन्दाज फिक्रो होश
पसपा किया हरीफ को हर हर महाज पर
लड़ता रहा निहत्था वह दुश्मन से बेखतर

(वकार 'नासरी' —नयादौर, १९८१)

खालिके नक्शेय फिर्दोसे वरी शाहजहाँ
तुझ पे रोशन थे यह असरारे हकीकत शायद
वक्त है अस्ल मे एक सैले रवाँ तेज कदम
जिसकी एक लहर में एक मौज मे बहे जाते हैं
सरवतो दौलतो इकबालो जफर जाहो हशम
जिंदगी हुस्नो तबानाई, जवानी दम खम
तूने इन आर्जी चेहरो से तगाफुल बर्ता
कुछ न समझा इन्हे रंगीन फरेबो के सिवा
और यह चाहा कि इसी कारगहे फानी मे
तेरे दर्दे गमे पिन्हाँ को मिले उम्रे दवाम
हश्र तक जिंदा ओ पाइन्दा रहे इश्क का नाम

(आलम 'फतेहपुरी'—नयादौर, सितम्बर १९८१)

उर्दू के इन उदाहरणो से हिन्दी वालो को कुछ आभास हो जायगा कि किस "उर्दू" भाषा को भारत के इस हृदय-देश मे द्वितीय राजभाषा बनाकर उसे ८५ प्रतिशत जनता पर लादने का प्रयत्न किया जा रहा है। द्वितीय राज-भाषा बनने पर सरकारी नौकरियो मे ही नही, म्यूनिसिपैलटियो, नोटिफाइड और टाउन एरियाओ, यहाँ तक कि कोआपरेटिव सोसाइटियो और ग्राम सभाओ मे कुछ लोग इस उर्दू के उपयोग की माँग कर सकते है, और द्वितीय राजभाषा होने के कारण उसका उपयोग करने से मना नही किया जा सकेगा। इस प्रकार द्वितीय राजभाषा के रूप में यह सभी को पढ़नी होगी। यही नही, उर्दू वाले इसे

फ़ारसी लिपि में लिखने की अनिवार्य शर्तें लगाते हैं। इसलिये हमारे राज्य में उर्दू भाषा ही नही, फ़ारसी लिपि भी सीखना प्रायः अनिवार्य हो जायगा। द्वितीय राजभाषा होने के कारण शिक्षा विभाग और शिक्षा बोर्ड को उसका पढ़ना अनिवार्य करना होगा तथा परीक्षाओ के सब प्रश्न-पत्र उर्दू में भी छापने पडेंगे नही तो "माइनारिटीज" के हितो की रक्षा न हो सकेगी।

हमारे मंत्री, विधायक, नौकरशाह, अधिकारी, कर्मचारी इन नमूनो को पढ़कर देखे कि वे इस भाषा को कितना समझ सकते है। उन्हे यह भाषा सीखनी होगी, यदि न भी सीखें तो विधान सभा में उर्दू के भाषण या विज्ञप्तियाँ समझने के लिए उन्हे एक "फ़ारसी-हिन्दी" कोश की आवश्यकता होगी। विधान सभा और शासन का काम ठीक तरह से चलाने के लिये वित्त मंत्री को एक ऐसा बृहद् "फारसी-हिन्दी" कोश तैयार कराकर मंत्रियो, मंत्रियो के सहायको, सचिवो से लेकर सहायक सचिवों, विधायको और राज्य के विभिन्न विधायको को देना होगा। फारसी कोश इसलिए आवश्यक होगा कि क्रियाओ, विभक्तियों और सर्वनामो तथा कुछ संज्ञाओ को छोडकर इसमे अधिकाश फारसी शब्द ही होते है। हिन्दी जानने वाले उन्हे तभी समझ सकेंगे जब उन्हे उनका अर्थ हिन्दी मे बताया जाय। मैं थोडी उर्दू जानता हूँ किन्तु इन नमूनों के अनेक शब्द मुझे 'लुग़त' मे देखने पडे। एक नमूने मे "जरीं और मुकल्लल" आया। "जरीं" के अर्थ तो मैंने लगा लिए पर "मुकल्लल" ने मुझे एकदम परास्त कर दिया। बडी कठिनाई से और प्रयास के बाद मालूम हुआ कि उसके अर्थ "जडाऊ" (जिसमे नग या रत्न जडे हो) है। 'जडाऊ गहने' साधारण लोग समझ लेते है। किन्तु 'जडाऊ' "गँवारू" शब्द है। वह शाही ज़बान फ़ारसी मे "फिट" नहीं बैठता, इसलिये "मुकल्लल" इस्तेमाल किया गया। स्कूली जीवन मे मेरे उर्दू पढने वाले साथियो ने उर्दू ली थी। उनकी उर्दू की किताब मे एक बढ़िया शेर था, जिसे वे बहुधा सुनाया करते थे :—

पश्शे, से साखे शेब-ए-मर्दानगी कोई
जब क़स्दे-खूं को आये तो पहले पुकार दे।

तब मेरी समझ मे नही आता था कि शायर ने "मच्छर" ऐसे शब्द के लिए "पश्शे" का क्यो उपयोग किया है। अब समझने लगा हूँ कि वही उर्दू है जिसमे इस देश के शब्द कम से कम उपयोग मे लाये जाये और विदेशी भाषा फ़ारसी के अधिक से अधिक शब्द लाये जाये।

इस राज्य की जनता का ध्यान एक और बात की ओर दिलाना आवश्यक है। उर्दू हमे कितना अभारतीय बना देती है, उसका एक नमूना भी इन नमूनो

में है । पंडित बिरज नरायन 'चकबस्त' शायद कौम से "बिरहमन" थे और नाम से मालूम पडता है कि उनका मज़हब हिन्दू था। वे उर्दू के बहुत बडे "कौमी शायर" थे । उन्होने एक नज़्म भगवान रामचन्द्र जी पर भी लिखने की मेहरबानी की । उसमे भगवान रामचन्द्र जी बनवास पर जाने के लिए अपने पिता महाराज दशरथ से विदा होकर अपनी माता के पास जा रहे है। पंडित जी ने उसे इस तरह अदा किया है—

"रुख़सत हुआ वह बाप से लेकर ख़ुदा का नाम"

गद्य मे इसका अन्वय होगा "वह (राम) बाप से ख़ुदा का नाम लेकर रुख़सत (विदा) हुआ"। यहाँ आदरसूचक 'रुख़सत हुए' न कहकर कुली-कबाडी के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एकवचन का उपयोग किया गया है। यह हिन्दुओ के आराध्य के प्रति कितनी अशिष्टता और अवमानना है ? दूसरी बात जो ध्यान देने की है वह "लेकर ख़ुदा का नाम" है। हमारे भगवान रामचन्द्र जी के मुँह से "ख़ुदा का नाम" निकलवाना शायर की शिष्टता और संस्कृति है।

लब लाल बदख़्शाँ से लिये दुर्रे अदन से

यहाँ मध्यपूर्व की संस्कृति बोल रही है। जनाब चकबस्त को सीता जी के ओठो की उपमा बदख़्शाँ के लाल (माणिक) और दाँतो की उपमा अदन के मोतियो (दुर) से देने की सूझी। उन्हे कोई भारतीय उपमा नही मिली। मिलती कैसे ? उर्दू साहित्य, पढने वाले को मध्यपूर्व एशिया की संस्कृति सिखाता और उसमें दीक्षित कर देता है। वह भारतीयता से कट जाता है। यह ऐसा विषय है जिसे विस्तार से बाद में लिखा जायेगा। इस राज्य के नागरिक को हम मस्तिष्क और भावना से भारतीय बनाना चाहते है या मध्यपूर्व एशिया का निवासी ?

किन्तु इस समय पाठक यह देखे कि जिस भाषा को हम पर थोपने का प्रयास किया जा रहा है, उसका स्वरूप क्या है और क्या वह हमारे और हमारी संतान की उन्नति मे बाधक होगी या साधक ?

कुछ प्रश्न

उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने के समर्थको से मैं बडी विनम्रता के साथ कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। उत्तर देते समय यह याद रखिये कि यदि उर्दू को द्वितीय राजभाषा बना दिया गया तो (१) सरकारी कामकाज फारसी लिपि मे इसी उर्दू मे करना होगा जिसके कुछ सामान्य उदाहरण दिये जा चुके है। अधिकारी तथा कर्मचारी आवश्यकता पडने पर इसी भाषा और लिपि को पढने और लिखने और बोलने को बाध्य होंगे, (२) सरकारी सेवा मे द्वितीय राजभाषा

उर्दू का उक्त स्तर का ज्ञान और कार्यकुशलता अनिवार्य कर दी जायगी, (३) राज्य की द्वितीय भाषा होने के कारण हाईस्कूलो और इंटर कॉलेजो मे उक्त प्रकार की उर्दू का पढना तथा फ़ारसी लिपि मे उसका लिखना अनिवार्य कर दिया जायगा, (४) विधान मंडलों मे जो सदस्य चाहेगे वे उसी मे बोल सकेगे। उनके भाषण फारसी लिपि मे आशुलिपि मे लिखे जायेगे तथा विधान मंडलो की कार्यवाही मे इसी लिपि मे छापे जायेंगे। प्रश्न भी उसी उर्दू मे किये जा सकेगे और मंत्रियो को उनके उत्तर भी इसी भाषा मे देने होगे, (५) सरकार की सब विज्ञप्तियाँ, आदेश, रिपोर्ट, बजट, राज्यपाल का भाषण तथा अन्य सभी प्रकाशन इसी उर्दू भाषा और फ़ारसी लिपि मे भी प्रकाशित करने होगे।

मेरा पहला प्रश्न मंत्रियो और विधायको से है।

क्या आप उपर्युक्त स्तर की उर्दू मे दिये गये भाषणो को ठीक तरह से समझ सकेंगे ? यदि ठीक तरह से न समझ सके तो उनका उत्तर कैसे देंगे ? उर्दू प्रश्नो का उत्तर उर्दू में ही देना होगा। क्या आप यह उर्दू बोल सकेंगे ? यदि आप उर्दूभाषी विधायको को अपनी बात समझाना चाहेगे तो क्या आप उसे ऐसी उर्दू मे कह सकेंगे जिसे वे बोलते या समझते है ? अथवा सयुक्त राष्ट्र सघ की तरह आप ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि आप जो कुछ हिन्दी मे कहे वह आपके कहने के साथ ही अनुवादित होकर उर्दूभाषी विधायको को उर्दू मे सुनाई पड़े ? क्या आपके पास ऐसे साधन और ऐसे आशु अनुवादक है जिनका इस उर्दू और हिन्दी पर समान अधिकार हो ? अध्यक्ष को भी कभी-कभी ऐसी भाषा मे ही बोलना होगा और उनके व्यवस्था आदि देने के लिए ऐसा ही तात्कालिक अनुवाद का प्रबन्ध करना होगा। क्या यह सब हो सकेगा ?

मेरा दूसरा प्रश्न उत्तर-प्रदेश के ६५-६६ प्रतिशत हिन्दीभाषियो, बुद्धिजीवियो और उनके राजनीतिक प्रतिनिधियो से है। क्या आप अपने बच्चो को यह अतिरिक्त भाषा पढाने को और फारसी लिपि सिखाने को तैयार है ? इस उर्दू और फारसी लिपि को सीखने तथा इसमे परीक्षा देने के लिए उन्हे कितना परिश्रम करना होगा, इसका आपको अनुमान है ? क्या वे वर्तमान विषयो के अतिरिक्त इस भाषा के लिखने-पढने का बोझ सहन कर सकेंगे ?

तीसरा प्रश्न उत्तर प्रदेश के विद्यार्थियो से है। क्या आप लोग इस भाषा को, जिसके नमूने दिये गये है, पढने और फारसी लिपि को शुद्ध रूप से लिखने की कुशलता प्राप्त करने को तैयार है ? यदि उर्दू द्वितीय राजभाषा बना दी गयी तो आपको इसे पढना ही होगा क्योंकि राज्य से मान्य भाषा का दर्जा पाने पर स्कूलो मे इसका पढ़ाना सरकार राजभाषा हिन्दी की तरह अनिवार्य कर देगी।

जो युवक सरकारी नौकरी करना चाहेगे उन्हें इस उर्दू और फारसी लिपि के पर्याप्त ज्ञान के बिना नौकरी न मिलेगी।

मेरा चौथा प्रश्न सरकार से है। वह यह कि दो प्रतिशत से भी कम लोगो द्वारा प्रयुक्त भाषा को द्वितीय भाषा बनाने से इस गरीब और करो (टैक्सो) के भार से परेशान राज्य का कितना व्यय बढ जायगा ? राज्य मे सचिवालय से लेकर जिलो के जिन अधिकारियो को आशुलिपिक (स्टेनोग्राफर) दिये जाते है, उर्दू के आशुलिपिक देने होगे। इनकी कितनी सख्या होगी ? राज्य के लिए कितने उर्दू टाइपराइटर खरीदे जायेगे और कितने टाइपिस्ट रखे जायेगे ? इनके लिए कितना अतिरिक्त कागज, मेज, कुर्सियां, कार्बन पेपर, रिबन आदि की आवश्यकता होगी ? सचिवालय के विभिन्न विभागो मे हिन्दी के आदेशो, ज्ञापो, विज्ञप्तियो, रिपोर्टो आदि का हिन्दी से उर्दू मे, और उर्दू से हिन्दी मे अनुवाद करने के लिए कितने अनुवादक रखे जायेगे ? भाषा विभाग मे उर्दू विभाग खोलकर उसका कितना विस्तार करना होगा ? बजट आदि को उर्दू मे भी पेश करना होगा। सभी या अधिकाश सरकारी आदेश आदि उर्दू मे भी छपाने होगे। इस समय गवर्नमेंट प्रेस की उर्दू मे इतना काम करने की क्षमता नही है। गवर्नमेंट प्रेस मे एक नया उतना ही बडा उर्दू विभाग खोलना होगा जितना बडा हिन्दी का विभाग है। गवर्नमेंट प्रेस के इस विस्तार मे कितना व्यय होगा ?

इसमे, तथा उर्दू को द्वितीय भाषा बनाने के परिणामस्वरूप जो नयी नियुक्तियाँ करनी होगी या जो सामान खरीदना होगा, उसका आवर्तक (रिकरिंग) और अनावर्तक (नॉन-रेकरिंग) व्यय कितने करोड वार्षिक और एकमुश्त होगा ? आपको आज ही विकास योजनाओ पर व्यय के लिये धन जुटाने मे परेशानी हो रही है। कर-भार अभी ही इतना अधिक है कि जनता उससे पिसी जा रही है। आप आज के व्यय को ही पूरा नही कर पाते। आपको कितना अधिक ओवर ड्राफ्ट लेना पड रहा है ? प्रतिवर्ष आप जनता से कितने करोड का ऋण लेते है और उसका ब्याज जनता के करो से दिया जाता है ? उर्दू को द्वितीय भाषा बनाने पर जो करोडो रुपयो का आवर्तक व्यय बढ जायगा, उसे पूरा करने का क्या आप ऐसा प्रबन्ध कर सकेगे कि करो और महगाई से त्रस्त इस राज्य की जनता पर बोझ न पडे ? क्या आप मे उर्दू की माँग करने वालो पर इस अपव्यय के लिए "उर्दू सेस" लगाने का साहस है ? क्या आपने उत्तर प्रदेश की ८५ प्रतिशत जनता मे अलोकप्रिय इस कदम को उठाने के पहिले इसके राजनीतिक, भावनात्मक, प्रशासनिक तथा आर्थिक परिणामो पर ठडे दिल से विचार किया ?

उर्दू के प्रति हिन्दी वालों का दृष्टिकोण—

हिन्दी वालो का उर्दू के सम्बन्ध मे क्या दृष्टिकोण है उसे सक्षिप्त मे बता देना आवश्यक है।

(१) राजर्षि पुरुषोत्तम दास टडन उर्दू को हिन्दी की एक शैली मानते थे। भाषा की दृष्टि से उर्दू हिन्दी का ही एक रूप है। यद्यपि सविधान ने उसे स्वतंत्र भाषा माना है तथापि अधिकांश हिन्दी वाले उसे अब भी हिन्दी की एक शैली ही मानते है। मै भी उनमें से एक हूँ। दोनो की क्रियाये, विभक्तियाँ, ढांचा मूलत एक है। किन्तु सविधान के कारण हम उसे स्वतंत्र भाषा मानने को बाध्य है।

(२) हिन्दी वाले उर्दू को अपनी एक शैली समझने के कारण उसके सरल और हिन्दी की प्रकृति मे आ जाने वाले शब्दो को बिना किसी सकोच के बराबर इस्तेमाल करते रहे है। सूर और तुलसी तक ने करार, जहर, गरीबनिवाज, निमकहरामी, गुलाम ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है। आज भी सामान्य लेखक उर्दू शब्दो का बहिष्कार नही करते।

हिन्दी वाले उर्दू के प्रति सद्भावना रखते है। हिन्दी पत्र–पत्रिकाओ मे उर्दू की कहानिया, ग़ज़ले आदि बराबर छपती है।

(४) किन्तु हिन्दी और उर्दू के लेखको और साहित्य मे जो भेद है उसके कारण दोनो शैलिया एक दूसरे से दूर होती जा रही है। वे भेद यह है—

(क) हिन्दी साहित्य ने सदैव भारत या हिन्दोस्तान की बात कही, सोची, और प्रचारित की। उसकी दृष्टि सदैव अखिल भारतीय रही। उसने अपने साहित्य मे भारतीय पशु–पक्षियो, नदियो, प्राचीन भारतीय महापुरुषो, वीरो और वीरांगनाओ का उपयोग किया।

उसका सौदर्यबोध भारतीय है। उसकी उपमाएँ, उसके अलकार, उसके विचार भारतीय हैं। वह सदैव अखिल भारतीय एकता का प्रचार करती रही है। उसके साहित्य मे सकीर्णता नही है। वह सभी क्षेत्रो और वर्गो जैसे सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, सभी के प्रति आदर के भाव दिखलाती रही है।

इसके विपरीत उर्दू का दृष्टिकोण भारत के प्रति उदासीन है। वह मध्यपूर्व की सस्कृति, विचारो, वहाँ के पशु–पक्षियो, वीरो (हीरो) का गुणगान करती है। वह भारतीय सस्कृति, इतिहास और विचारो की उपेक्षा करती है और मध्यपूर्व

की संस्कृति और इतिहास का, जो अभारतीय है, प्रचार करती है। यहाँ केवल संकेतमात्र दिया गया है। इस विषय पर विस्तार से एक लेख अलग लिखा जायेगा।

(ख) संविधान मे हिन्दी की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को स्पष्ट कर सरकार का कर्त्तव्य इस प्रकार निश्चित किया गया है "हिन्दी की वृद्धि करना, इसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्त्वो की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके।" हिन्दी यह काम अपने जन्म से बराबर करती रही है और हिन्दी वाले अब इस कार्य मे और सचेत हो गये है।

इसके विपरीत उर्दू भारत की सामासिक संस्कृति (इण्टिग्रेटेड कल्चर) की कौन कहे, केवल मध्यपूर्व की संस्कृति का प्रचार करती है। वह अब तक भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति करने मे एकदम असमर्थ रही है। वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति न करके केवल मध्य-पूर्व और अरब की संस्कृति की अभिव्यक्ति करती है।

(ग) संविधान मे हिन्दी के लिये लिखा है—"इसकी (हिन्दी की) आत्मीयता (प्रकृति) मे हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची मे दी गयी भारतीय भाषाओ के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुये तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यत संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओ से शब्द ग्रहण करते हुये उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना।"

इसके विपरीत उर्दू मे उसका शब्द-भडार भारतीय भाषाओ से समृद्धि न करके अभारतीय अरबी और फारसी शब्दो की भरमार से किया जाता है। सामान्य चलते हुए हिन्दी शब्दो के स्थान पर फारसी या अरबी शब्दो का प्रयोग करना उसमे गौरव की बात समझी जाती है (जैसे मच्छर ऐसे चलते शब्द के लिए सामान्य कविता मे फ़ारसी का 'पश्शा' लिखना)। इस कारण वह दिनोदिन अधिकाधिक अभारतीय और कठिन होती जा रही है।

(घ) उसकी लिपि अभारतीय है। उसमे शुद्ध रूप से इस देश की भाषाओ के शब्द नही लिखे जा सकते है। ऐसा सामान्य नाम जैसे "राम प्रसाद" भी "राम परसाद" ही लिखा जाता है। वह लिपि अभारतीय तो है ही वह अनेक भारतीय शब्दो को ठीक तरह से लिखने मे भी असमर्थ है। भारत की सामासिक एकता के लिए इस शती के आरम्भ से ही जस्टिस शारदाचरण मित्र ने सब

भारतीय भाषाओं को देवनागरीलिपि मे लिखने का आन्दोलन चलाया था और 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला थाजिसमे सभी भारतीय भाषाओ के लेख देवनागरी में शुद्धतापूर्वक छापे जाते थे। आचार्य विनोबा भावे भी उसी का प्रचार अभी तक कर रहे थे। किन्तु उर्दू वाले अभारतीय फारसीलिपि—जो इस देश की भाषाओ के लिये अनुपयुक्त है—छोडने को तैयार नही। क्योकि न तो वे भारतीय भाषाओ के शब्द लेना चाहते हैं और न अरबी, फ़ारसी से अधिकाधिक शब्द लेना बद करना चाहते है।

अतएव उर्दू हिन्दी की एक शैली होते हुए भी उर्दू वाले उसे लिपि और शब्दावली मे मध्य-पूर्व की सस्कृति की वाहिका और विदेशी अवैज्ञानिक लिपि का प्रयोग कर, उसे अभारतीय बनाने का आग्रह कर, इसे न तो भारतीय बनने देते है और न इसे भारत की सामासिक सस्कृति के प्रचार का माध्यम ही।

हिन्दी वाले फिर भी उर्दू का विरोध नही करते। आज तक हिन्दी के किसी विद्वान ने मुंशी रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी (जो मेरे अभिन्न मित्र थे) की तरह "मैं हिन्दी का दुश्मन हूँ" लेख नही लिखा, और न लिख सकता है। न वे उर्दू वालो की तरह, जो भारतीय भाषाओ को अछूत समझते है, उर्दू शब्दों का प्रयोग करने मे सकोच ही करते है। वे उर्दू कविताएँ आदि देवनागरी में छापते रहते है। वह उर्दू के विरोधी नही, केवल उसको द्वितीय राजभाषा बनाने का विरोध करते हैं जिसके कुछ कारण ऊपर दिये गये है। वे उर्दू की उन्नति चाहते हैं। उसे हिन्दी की एक शैली समझने के कारण वे उसका विरोध कैसे कर सकते है ? उसमे फारसी के शब्द भी हो, इसके भी हम विरोधी नही। हम इसे शैली की विशेषता मानते हैं। किन्तु दाल मे निमक डाला जाता है, निमक मे दाल नही डाली जाती। उर्दू मे फारसी रुपी निमक नही डाला जा रहा है बल्कि फारसी रुपी निमक मे उर्दू की दाल डाली जाती है। इसी कारण वह हमे नही रुचती। सरल उर्दू का हम सदा स्वागत करते है और करते रहेगे। किन्तु मध्य-पूर्व की सस्कृति से ओत-प्रोत एव अनावश्यक उसे फारसी तथा अरबी के निकट लाने वाली 'तथाकथित' भारतीय मुसलमानो की "छोटी फारसी" हमे नही पसन्द है, वह कभी भारतीय जनता में लोकप्रिय नही हो सकती।

—खुर्शेदगंज, लखनऊ

महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका पत्र-साहित्य

—डॉ० कमल पुंजाणी

महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग की महान् विभूति थे। जगद्गुरु शकराचार्य के पश्चात् भारत ने ऐसे प्रखर तेजपुंज को प्राप्त कर वैदिक धर्म और आर्य सस्कृति की रक्षा की। स्वामी जी ने समाज मे घुस आई कुरीतियों और अध-परम्पराओ पर कठोर प्रहार किया तथा वैदिक संस्कृति पर आधारित जीवन की स्थापना की।

भारतीय पुनर्जागरण के आन्दोलन में धार्मिक-सामाजिक क्षेत्रो का नेतृत्व धारण करने के कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती को देश के विशाल जन-समुदाय के सम्पर्क मे आना पडा। विभिन्न शहरो मे आर्य-समाज की स्थापना के बाद उनका लोक-सम्पर्क और अधिक बढ गया था। परिणामस्वरूप आर्य-समाज के मत्रियो, पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादको, देशी राजाओ तथा प्रजा के विभिन्न वर्गों से उनका पत्र-व्यवहार भी उत्तरोत्तर बढता गया। इसी विस्तृत पत्र-व्यवहार का एक अश, उनके देहावसान के पश्चात्, महात्मा मुंशीराम के सम्पादकत्व मे "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग-१" शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

"ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग-१" के प्रकाशन के बाद 'ऋषि के लिखे एक-एक पत्र-शब्द का सुरक्षित रखना आवश्यक है' इस शुभ संकल्प के साथ पं० भगवद्दत्त जी ने अथक् परिश्रम से खोज-खोज कर स्वामी जी के पत्रों का एक स्वतन्त्र संकलन "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, भाग-१" शीर्षक से प्रकाशित कराया।

पं० भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" के चारों भागो के प्रकाशन के पश्चात् गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगडी से पं० चमूपति के सम्पादकत्व में "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग-२" शीर्षक पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित बृहद् ग्रन्थ में स्वामी जी के सन् १९५५ तक प्रकाशित प्रायः सभी पत्र संकलित हैं। इसमे स्व० महात्मा मुंशीराम तथा पं० चमूपति द्वारा सम्पादित क्रमशः "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग १ और २" के पत्र भी समाविष्ट हैं। इसमें पत्रो के साथ पाद-टिप्पणियो मे सन्दर्भ भी दिये गये हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका तथा प्रकाशकीय वक्तव्य में स्वामी जी के पत्र-व्यवहार पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। साथ ही जिनके नाम पत्र भेजे गये हैं, उनकी सूची भी दी गई है। इसमें स्वामी जी के जीवन-चरित्र मे दी गई तिथियो तथा घटनाओ को पत्रो में निर्दिष्ट तिथियो और घटनाओ के परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने का प्रयास भी किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वामी जी के ग्रन्थो के लेखको—पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त आदि के विषय मे स्वामी जी की सम्मतियाँ भी उसमे प्रकाशित है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ स्वामी जी के विशद् व्यक्तित्व का प्रकाशस्तम्भ है।

स्वामी जी के ग्रन्थो को पढकर उनकी विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, वेदनिष्ठा, त्याग, तपस्या आदि का विशद् परिचय मिल जाता है, किन्तु उनके चरित्र के कुछ पहलू ऐसे भी हैं जिन्हे हम उनके पत्रो के द्वारा ही जान सकते है। यहाँ कुछ ऐसे ही पहलुओ पर प्रकाश डाला जा रहा है—

(१) निर्भीकता और स्पष्टवादिता—

निर्भीकता और स्पष्टवादिता स्वामी जी के स्वभाव की महत्वपूर्ण विशेषताएँ थी। सच्ची बात कहने मे वे किसी से नही डरते थे। लाला कालीचरणदास द्वारा आर्यसमाज के एक अखबार में नाटक का विषय छापने की बात को अनुचित ठहराते हुए, उन्होने स्पष्ट शब्दो मे लिखा था—

"लाला कालीचरणदास जी, आनन्दित रहो।

विदित हो कि तुम आर्य समाज के पत्र मे नाटक का विषय मत छापो। यह अनुचित बात है। यह आर्यसमाज है, भड़ुआसमाज नही।...."
(ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन (१९५५) पृ० ७९)

(२) व्यवहारकुशलता—

स्वामी जी के ग्रन्थो को पढने से यही जाना जाता है वे वेद-शास्त्रो के उद्भट विद्वान्, त्यागी, तपस्वी और निरीह सन्यासी थे। परन्तु जब हम उनके पत्र पढते हैं तो यह भी ज्ञात होता है कि वे एक कुशल व्यवस्थापक और प्रबन्धक भी थे। पाई-पाई पर उनका ध्यान रहता था। हिसाब-किताब सम्बन्धी रसीदे लेने, प्राप्तिकर्त्ता से नियमानुसार हस्ताक्षर कराने, अच्छे-बुरे कर्मचारी को

परखने आदि की भी उन्हे खूब जानकारी थी। यथा—

"स्वामी ईश्वरानन्द जी, आनन्दित रहो।

(१) सब यन्त्रालय के पदार्थ और नौकरो पर दृष्टि रखना कि नियमानुसार सब काम होते है या नही, (२) जब कभी जिसका भी व्यतिक्रम देखें तो जो शिक्षा देने से सुधर सकता हो उसे वही सुधार देना, न माने तो हमको लिखना। ·"

(ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग १; पृ० १७-१८)

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी मे व्यावहारिक बुद्धि भी अच्छी थी।

(३) स्वदेश-भक्ति—

स्वामी जी सच्चे देशभक्त थे। देश के गौरव और ज्ञान की उनको सतत् चिन्ता रहा करती थी। उन्होने अपने शिष्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी विद्वान् श्यामजी कृष्ण वर्मा को विदेश भेजते समय जो सूचनाये दी थी, उनमे उनकी स्वदेश-भक्ति स्पष्टरूपेण झलकती है। देखिए—

"······अब आपको उचित है कि जब वहाँ जावें, जो आपने अध्ययन किया है, उसी मे वार्तालाप करे और कह देवें कि मैं कुल वेद-शास्त्र नही पढा, किन्तु मैं तो आर्यावर्त्त देश का छोटा विद्यार्थी हूँ और कोई बात या काम ऐसा न हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवे······"

(ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, पृ० ८२)

यह पत्र स्वामी जी के स्वदेश-प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है।

(४) हिन्दी के प्रति अनुराग और उसके प्रचार में योगदान—

स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी। संस्कृत पर उनका असाधारण प्रभुत्व था। परन्तु हिन्दी के प्रति उनके मन मे असीम अनुराग था। हिन्दी की सम्पर्कक्षमता देखकर उन्होने उसे 'आर्यभाषा' की गरिमायुक्त संज्ञा प्रदान की थी। लाहौर के आर्यसमाज के मन्त्री भाई जवाहरसिंह ने उनको टूटी-फूटी हिन्दी में एक लम्बी चिट्ठी लिखी थी, जिसके उत्तर मे स्वामी जी ने उनको प्रोत्साहित करते हुए लिखा था—

"···जो तुमने इतनी बडी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धि जानी।"

(ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग १, पृ० १२५)

स्वामी जी अपना बहुत-सा पत्र-व्यवहार दूसरों को बोलकर लिखवाते या लिखने को कह दिया करते थे। अत उनके पत्रो मे भाषायीय अशुद्धियाँ प्रायः

लेखक के प्रमाद का परिणाम ही हैं। यद्यपि गुजराती और संस्कृत पर उनकी जितनी पकड थी, उतनी हिन्दी पर शायद नही थी, तथापि हिन्दी के प्रति अनुरक्ति के कारण वे अपने विचार उसमे अच्छी तरह व्यक्त कर सकते थे। उन्होने हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमीशन के पास, हिन्दी के पक्ष मे, स्थान-स्थान से स्मरणपत्र भिजवाये थे। इस सम्बन्ध मे लाला कालीचरण को प्रेषित १४ अगस्त १८८२ के पत्र का निम्नांकित अश—

"......आप लोग भी जहाँ तक हो सके, गोरक्षार्थ और आर्य-भाषा के राजकार्य मे प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिए।"
(ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, पृ० ३५४)

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी की उन्नति और प्रचार-प्रसार मे स्वामी जी का योगदान महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ मे डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के इस कथन का स्मरण हो जाता है कि—"हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार मे आर्यसमाज का योगदान सर्वविदित है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज से एक शताब्दी पूर्व अपना लेखन हिन्दीभाषा मे प्रारम्भ किया था। स्वामी जी हिन्दीभाषा को आर्यभाषा कहकर पुकारते थे।" (द्विवेदीयुगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव (१९७३), भूमिका)

(५) दृष्टिकोण—

स्वामी जी को वेदो के प्रति अपार आस्था थी। वे भारतीय समाज की समस्त विकृतियो को हटाकर उसे वैदिक धर्म के अनुसार ढालना चाहते थे। "वेदो की ओर लौट चलो" उनका मुख्य नारा था। 'भारतमित्र' के सम्पादक के पास भेजे गये पत्र मे उन्होने वेद-विषयक अपनी सम्मति प्रकट करते हुए लिखा था—

"......मैं ईश्वर नही, किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ। वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये है। इस अभिप्राय से कि यहाँ तक मनुष्य की विद्या और बुद्धि पहुँच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे। इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है, तावत् निष्पक्षपात होकर वेदो का अर्थ प्रकाशित करता हूँ।" (ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग-१, पृ०-६८)

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी की विचारधारा वैदिक धर्म के अनुकूल थी। वे वैदिक संस्कृति के अनुसार भारतीय समाज का निर्माण करना चाहते थे।

१।११।२ आर. टी. जाडेजा एस्टेट
गुरुद्वारा के निकट
जामनगर (गुजरात) ३६१००१

सिन्धु-संस्कृति के निर्माता

डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा

भारतीय इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पडने से हजारो वर्ष पहले मानव सभ्य जीवन और व्यवस्थित समाज के लिये प्रयास कर रहा था। पाषाणयुग में उसकी चेष्टाये सफल हुयी थी किन्तु जब उसे धातु-ज्ञान हुआ तो उसके जीवन मे क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। अब पत्थर से आगे बढकर उसने धातु का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया। ताम्रयुग की मुख्य धातु सोना और तॉबा थी। तॉबे के साथ-साथ बहुधा टिन भी प्राप्त होता था। इन दोनो धातुओ को मिलाकर कॉसा बनाया गया। यह तॉबे की अपेक्षा अधिक कठोर था। ताम्र-युगीन लोगो ने धातु को गलाना सीख लिया था। पत्थर, मिट्टी और लकडी के साचे मे तरल धातु को भरकर हथियार तथा अन्य उपकरण बनाये जाने लगे थे।

भारतीय इतिहास मै सभ्य और समृद्ध जीवन का प्रथम उदाहरण सिन्धु-घाटी मे मिला। यह एक नवीन खोज थी जिसके लिये प्रथम श्रेय रायबहादुर दयाराम साहनी और विद्वान राखलदास बनर्जी को दिया जा सकता है। बाद मे सर जॉन मार्शल की अध्यक्षता मे इस क्षेत्र मे विधिवत् उत्खनन किया गया जिसके फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुयी। विद्वान् पानिक्कर[1] के अनुसार यह सस्कृति आर्यों से पहले की है। अधिकाँश विद्वान् भी ऐसा ही मानते है, किन्तु कुछ विद्वान् इसे आर्यो की ही देन मानते है। निर्णयक उत्तर के लिये अभी और अनुसधान की आवश्यकता है। इस सस्कृति का समय लगभग ३००० ईसा पूर्व माना गया है। यह बात महत्वपूर्ण है कि इस नई खोज ने भारतीय सस्कृति को ससार की अन्य प्राचीनतम संस्कृतियो के बराबर मे खडा कर दिया है।

यह प्रश्न सहज रूप से ही उठता है कि इस सस्कृति के निर्माता कौन थे ? इस सम्बन्ध मे निम्न चार मतो का प्रतिपादन हुआ है—

क. सिन्धु-संस्कृति के निर्माता आर्य थे।
ख. सिन्धु-सस्कृति के निर्माता सुमेरियन थे।

1. A Survey of Indian History, pp 3–4

ग सिन्धु-संस्कृति के निर्माता द्रविण थे।

घ. सिन्धु-संस्कृति के निर्माण मे अनेक जातियो का योग था।

मोहनजोदडो और हड़प्पा के भग्नावशेषों में मनुष्यों के अस्थि-पिंजर भी मिले हैं। इनके अध्ययन से प्रगट होता है कि इस संस्कृति के निर्माण मे अनेक जातियो का योग था। डॉ० गुहा के अनुसार, इन नगरो से प्राप्त अस्थि-पिंजर चार भागो मे विभक्त किये जा सकते हैं—प्रोटो आस्ट्रेलायड, भूमध्यसागरीय, अल्पाइन और मेगोलियन। सबसे अधिक संख्या भूमध्यसागरीय नस्ल की थी। अतः परिणाम निकाला जाता है कि इसी नस्ल के लोगो ने सिन्धु-सस्कृति का निर्माण किया। भारत के द्रविण भी इसी नस्ल की एक शाखा थे। आज तो द्रविण लोग केवल दक्षिण भारत में ही निवास करते हैं, किन्तु शायद पहले उत्तरी भारत मे भी ये लोग बसे हुए थे। बिलोचिस्तान के एक भाग मे आज भी 'ब्राहुई' भाषा बोली जाती है। यह भाषा द्रविण वंश की है। इससे द्राविणो की सत्ता दक्षिण से बाहर भी सूचित होती है। हो सकता है कि किसी आक्रमण के कारण ही द्राविणो को उत्तरी भारत से भाग कर दक्षिणी भारत जाना पडा हो। कुछ विद्वानो का कहना है कि बिलोचिस्तान मे ब्राहुई भाषा द्रविणो के पश्चिमी देशो के साथ केवल व्यापार को सूचित करती है। इस प्रसंग मे एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है कि अस्थियो और प्रतिमा-मस्तको के वैज्ञानिक अध्ययन के परिणाम पर बहुत सतर्कता से विचार करना चाहिये। कलाकार कोई वैज्ञानिक नहीं थे और इन मस्तको की संख्या भी इतनी कम है कि इससे अकाट्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

आर्यों का पक्ष अभी तक सबल नही बन पाया है। एक बडा अन्तर तो दोनो मे यह है कि सिन्धु संस्कृति नागरीय है और वैदिक सस्कृति ग्रामीण है। स्वामी शकरानन्द जैसे विद्वानो ने बडी योग्यता के साथ आर्यों के पक्ष का प्रतिपादन किया है। लेकिन यदि यह मान लिया जाय कि सिन्धु संस्कृति का निर्माण आर्यों ने किया है, तो ऋग्वेद की तिथि सुदूर अतीत मे हट जाती है। वर्तमान जानकारी जहाँ तक है, उसके सदर्भ मे इसे स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है।

कुछ विद्वान सुमेरियनो तथा सिन्धु-संस्कृति की समानतायें प्रस्तुत करते हैं तथा यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस संस्कृति के निर्माता सुमेरियन ही थे। किन्तु समानताओ के आधार पर दूसरी बात भी कही जा सकती है। अगर यह कहा जाये कि सुमेरियन संस्कृति का निर्माण सैन्धवयुगियो ने किया तो उपर्युक्त तर्क के आधार पर इसे भी मानना चाहिये। ये युक्तियाँ फिर भी दुर्बल ही हैं।

जहाँ तक सिन्धु-संस्कृति मे अनेक जातियों के योग का प्रश्न है, उससे हटा नहीं जा सकता। यह क्षेत्र प्राचीन काल मे अनेक सस्कृतियो का मिलन-स्थल रहा है। प्राचीन सभ्य-ससार मे लेन-देन दोनो प्रचिलित रहे। अगर अतीत काल में भारत ने संसार को कुछ दिया है तो निश्चय के साथ लिया भी है। हाँ, हमारी यह प्रतिभा अवश्य रही है कि बाह्य प्रभावों को लेकर हमने उनका भारतीयकरण कर दिया है। डॉ० सकालिया[2] ने लिखा है कि अगर हमे सिन्धु सभ्यता के नाश के कारणो का ठीक पता नही है तो हम इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी नही जानते है।

आचार्य एव अध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय सस्कृति, इतिहास तथा
पुरातत्त्व विभाग।
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

---

२. इण्डियन आरकेलॉजी टु-डे, पृ० ७१

वैदिक युग में प्रजातंत्र

डॉ० जबरसिंह सेंगर

वैदिक युग मे राजतंत्र होते हुए भी राजा का स्वरूप प्रजातांत्रिक था। राजा की शक्ति अपनी न होकर प्रजा की शक्ति थी। प्रजा की कृपा पर राजा का अस्तित्व दिखाई देता था। प्रजा की कृपा उसके कार्यों, त्याग, देश-सेवा, वीरता एवं देश-भक्ति पर निर्भर रहती थी। राजा का चयन प्रजा खूब परख कर करती थी। उसको पुरोहित खूब उपदेश देता था। उसको अधिकार एवं कर्त्तव्यो का ज्ञान कराता था। उससे प्रजा के प्रति एव राष्ट्र के प्रति वफादार रहने की प्रतिज्ञाएँ करवाता था। इससे भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि राजा को राज्य प्रजा सौंपती थी। राज्य सौपते समय उसको कर्त्तव्यो का ज्ञान कराया जाता था। प्रजा भी राज्य को एक योग्य राजा के हाथो मे तभी सौपती थी, जब वह राजा को अच्छी तरह परख लेती थी। नीचे लिखे उद्धरणो से स्पष्ट हो जाता है कि यदि वशानुक्रम राजा बनता होता तो उसे प्रजा से राज्य माँगने की क्या आवश्यकता थी ? भले ही परम्परा रही हो कि राजा का पुत्र यदि इस योग्य पाया गया हो,तो उसे प्रजा ने राजा चुन लिया हो। राजा एव प्रजा मे राष्ट्र-हित के लिए काफी निकटता एव पारस्परिक विश्वास था।

'राजा राज-सस्था से बाहर नही,अपितु वह भी एक अग के रूप मे है'— यह एक भारत का प्राचीन विश्वास है। जब राजा का अभिषेक होता था तो वह निम्न मत्र पढता था—

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ, ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरु, अरत्नी जानुनी, विशोमेंगानिसर्वतः॥
(यजुर्वेद—२०।८)

अर्थात् राजा कोई पृथक् वस्तु नही है। राजा का शरीर राष्ट्र और प्रजाओ से मिलकर बना है। राष्ट्र उसकी पृष्ठवंश है तथा नाना प्रकार की प्रजाये उसके नाना अंग हैं।

इससे स्पष्ट है कि राजा को यह आभास कराया जाता था कि राष्ट्र और प्रजा उसका शरीर है। यदि उनको कोई कष्ट या दुख होगा तो राजा यह न समझे कि कष्ट किसी और को हो रहा है—अपितु यह कष्ट राजा को ही हो रहा है। दोनो—प्रजा एवं राजा के स्वार्थ समान ही थे। प्रजा एव राजा का सम्बन्ध दामन-चोली जैसा था। राजा यह भी समझता था कि वह प्रजा का वैतनिक भृत्य है और उसका कर्तव्य है कि उस वृत्ति के बदले मे प्रजा की सर्वप्रकार से रक्षा करे। अभिषेक के समय राजा निम्न वाक्य कहता था—**"योगक्षेमं व आदाय अहं भूयासमुत्तमः** – (ऋग्वेद १०।१६६।५), अर्थात् हे प्रजा-जनो ! तुम्हारा अन्न खाता हू, मै अपने काम को श्रेष्ठता से निभा सकूं। राजा का योगक्षेम प्रजा के हाथो मे समझा जाता था, न कि प्रजा का योगक्षेम राजा के हाथो मे।

राज्य के व्यक्तियो मे से योग्य पुरुष को ही राजा चुना जाता था। राजा को राजकुल मे उत्पन्न होने की कोई विशेष शर्त नही थी—यह उल्लेख हमे वेद के राज-प्रकरण में कई स्थान पर मिलते है। कालचक्र के साथ-साथ राजकुल के योग्य व्यक्ति को राजा चुनने की परम्परा प्रचलित हो गई। राजा अपनी इच्छानुसार उत्तराधिकारी नही चुन सकता था। प्रजा जिसे राजा बनाने की अनुमति देती थी, वही युवराज बन सकता था। राज्य के श्रेष्ठ पुरुष को ही राजा चुना जाता था।

ऋषभ मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ।।

(ऋग्वेद १०।१६६)

जो राजा बनना चाहता था, वह पुरोहित से कहता था—"मै समान देशीय पुरुषो मे सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ हूँ। विरोधियो के आक्रमण को सहने वाला हूँ तथा शत्रुओ को मार भगाने वाला हूँ। इसलिये मुझे आप राजा बनाकर मेरा अभिषेक कीजिए। इस उदाहरण से राजकुल मे उत्पन्न व्यक्ति को राजा बनाने की बात की पुष्टि नही होती है। जो राज्य-भार उठाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति होता था, उसे राजा चुनने की आज्ञा वेद भगवान देते है—

इमं देवा असपत्नं सुवध्व महते क्षत्राय, महते ज्येष्ठ्याय,
महते जान राज्याय इन्द्रस्येन्द्रियाय ।।
इममुष्य पुत्रं अमुष्यै पुत्रं अस्यै विश एष वोऽमी राजा ।।

(यजु० ९।४०)

अर्थात् "जिसका विरोधी कोई न हो और सारा राष्ट्र जिसके पक्ष मे हो—ऐसे पुरुष को बड़े भारी विस्तृत राज्य की अभिवृद्धि, कीर्ति और ऐश्वर्य बढाने के लिये चुनो और सब लोग कहे कि अमुक पिता और अमुक माता के पुत्र को हम राजा बनाते है।" अत उक्त गुणो से सम्पन्न व्यक्ति को ही राजा चुना जाता था। वेद भगवान् प्रजा को कहने का उपदेश देते है और प्रजा राजा को सम्बोधित कर कहती है—

नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यै इयन्ते राड् यन्ता सिपमानो ध्रुवोअसि धरुण.।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषायत्वा ॥

(यजु० ८।२२)

अर्थात् प्रजा के प्रधान पुरुष कहते है—"हे मातृभूमि तुझे नमस्कार है। हे मेरी प्यारी मातृभूमि तुझे नमस्कार है। हे राजन तू हमारी मातृभूमि का नियन्ता और धारण करने वाला है। तुमको हम इसकी कृषि को प्रफ्फुलित करने के लिए, समस्त देशवासियों के कल्याण के लिए, उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिए और इनके पालन–पोषण के लिए राजा बनाते हैं।"

वार्त्रं हत्याय शवसे पृतनाषाह्यायच।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥

(यजु० १८।६८)

अर्थात् "शत्रुओ से रक्षा के लिए तुझे राजा बनाते है।" इससे स्पष्ट है कि जो पुरुष देशरक्षा, प्रजा का हित-चिंतन, राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने मे सक्षम होता था, वही व्यक्ति राजा चुना जाता था। इसके बाद राजा प्रजा से बडे ही विनम्र शब्दो मे राज्य माँगता था—

सूर्यत्वर्चसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंमेदत्त स्वाहा।
सूर्यत्वर्चसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैदत्त।
मान्दास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहा।
व्रजक्षितस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त।
वाशास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंमे दत्त।
शविष्ठास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंमे दत्त।
शकरीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंमे दत्त।
जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंमे दत्त।
विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंमे दत्त।

मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तांम्महिक्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना।
अनाधृष्टाः सीदत सहौजसोमहि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतो ॥

(यजु० १०।४)

अर्थात "सूर्य के समान दीप्ति वाले विद्वान प्रजा-पुरुषो ! राष्ट्र को देना आपके अधिकार मे है। आप मुझको राष्ट्र दीजिए। आप सारे मनुष्यो को आनन्द देने वाले है। आप गौ आदि पशुओ की रक्षा करने वाले हैं। आप बलशाली और प्रजा की रक्षा करने वाले है। आप समस्त जीवमात्र की रक्षा करने वाले है। आप स्वयमेव राज्य करने वाले हैं। आप मुझे राष्ट्र दीजिए।" इसके बाद प्रजा को सबोधित करके राजा का उम्मीदवार पुन कहता है—"हे प्रजाओ ! आप वीर है। आप सबके प्रति माधुर्य प्रदर्शित करने वाली हो। आप मिलकर यह विशाल राष्ट्र मुझे दीजिए और शत्रुओ से निर्भय होकर अपने बल को बढाते हुए राष्ट्र में निवास कीजिए।" इससे स्पष्ट है कि राज्य राजा का न होकर प्रजा का ही समझा जाता था। प्रजा राजा को राज्य देते समय निम्न शब्दो का प्रयोग करके कहती है—

सोमं राजा नमवसेग्निमन्वारभामहे। (यजु० ९।२६)

अर्थात "प्रजाओ के प्रति शाति से व्यवहार करने वाले और शत्रुओ के प्रति अग्नि के समान क्रोध दिखाने वाले वीर पुरुष को हम राष्ट्र की रक्षा के लिए राजा बनाते हैं।" आगे पुरोहित राजा को निम्न आशीर्वाद रूप मे सदेश देता है—

आत्वागन् राष्ट्रं सहवर्चसो दिहि प्रांड् विशांपतिरेकराट्त्व विराज।
सर्वास्त्वा राजन प्रदिशो ह्वयन्तु उपसद्योनमस्यौ भवेह॥
(अथर्व० ३।४।१)

अर्थात् "हे राजन ! तुझे राष्ट्र दिया जाता है। तू प्रजा का पालक होकर सिहासन पर विराजमान हो। सारी दिशाएँ अथवा सर्वदिशाओ के पुरुष तुझे राजा स्वीकार करे और तेरे पास आकर तुमको नमस्कार करें। सारी दिशाओ, प्रदिशाओ की प्रजाये तुझे राजा चुने। राष्ट्र का तू मुखिया है। राष्ट्र के शिखर पर विराजमान होकर हम सबको धन-धान्य से अलकृत कर।"

एक अन्य स्थान पर पुरोहित राजा को आशीर्वाद के शब्दों से आशीर्वाद देते हुए कहता है—**युंचन्तु त्वा मरुतौ विश्ववेदसः।** (यजु० ९।८), अर्थात् "हे राजन सकल विद्याओ के जानने वाले विद्वान पुरुष तुझे राजपद पर नियुक्त करे।'

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनः प्रतिमित्राः अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते विशिक्षेमपदी धरन्॥
अथर्व० ३।३।५

अर्थात् "हे राजन ! प्रजा के सभी पुरुष और तुम्हारे सारे मित्र तुम्हें राजा स्वीकार करें। मेघ एवं अग्नि आदि दिव्य पदार्थ तेरी प्रजा का कल्याण करते रहें।" इससे स्पष्ट है कि राजा का चयन प्रजा करती थी और जब प्रजा राजा चुन लेती थी तो पुरोहित पुनः कहता था—

स राजा राज्य मनुमन्यतान् ।
इदं विशष्त्वा सर्वा वांछन्तु ॥

अथर्व ४।२।८

अर्थात् "हे राजन ! हम आपको यह राज्य देना मान चुके है। अत आप इसे स्वीकार कीजिए। व्याघ्र के समान इस सिंहासन पर विराजमान हूजिए और सारी दिशाओ पर विजय पाइये, जिससे प्रजाये तुमको राज्य के लिए पसन्द करे।" राजा की नियुक्ति प्रजा की ओर से होती थी। व्यास भगवान कहते है कि— राष्ट्रस्येत त्कृत्यतं राज एवाभिषेचमम्। अर्थात् 'यह राष्ट्र का काम है कि वह राजा नियुक्त करके उसका राज्याभिषेक करे।' पुरोहित राजा को उपदेश देता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजा की नियुक्ति प्रजा की सम्मति से होती थी।

आत्वा हार्ष मन्तरेधि ध्रुवास्तिष्ठा विचाचलि ।
विशस्त्वा सर्वा वाच्छन्तु मात्वद्राष्ट मधिप्रशत् ॥

ऋग्वे० १०।१७३।१

अर्थात् "हे राजन ! तू अविचिलित होकर सिंहासन पर विराजमान हो। तू अपने आपको ऐसा बना कि सारी प्रजाये तुझे पसद करे तथा कोई ऐसा अवसर न आवे कि तेरा राष्ट्र तेरे हाथ से निकल जाये।"

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम।।

यजु० १८।४८

अर्थात् पुरोहित कहता है कि "हे राजन् ! हमारी प्रजा मे रहने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियो, वैश्यो और शूद्रो की उन्नति करना तुम्हारा काम है।" राजा भी प्रजा के प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार का उद्धरण भी वेदो में मिलता है।

सोम राजन्विश्वास्त्व म्प्रजा उपावरोह।
विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ॥

यजु० ६।२६

अर्थात् "हे सौम्य गुण वाले राजन ! तू सब प्रजाओ पर शासन कर और

सब प्रजायें तुझ पर शासन करे।" इस प्रमाण से अधिक और कौन-सा प्रमाण मिल सकता है जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि राजा ही केवल प्रजा पर शासन नही करता, किन्तु प्रजा भी राजा पर अकुश रखती है। राज्याभिषेक के समय भी प्रतिज्ञा कराई जाती थी कि राजा प्रजा की सम्मति से राज-संचालन करेगा। वह स्वेच्छाचारी होकर राज्य-कार्य नही करेगा। एक स्थान पर पुरोहित राजा को उपदेश देता है—

त्वन्देव सोम इन्द्रस्य प्रियम्पाथो वीहि आत्मत्सखा।
त्वन्देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियंपाथो वीहि ॥

(यजु० ८।५०)

अर्थात् "हे राजन्। तू हम लोगो का मित्र है। तू वही राज्य-कार्य कर, जो धार्मिक विद्वान् पुरुषो को प्रिय हो।" प्रजातन्त्र का यह भी उदाहरण मिलता है—राजा स्वेच्छाचारी न होकर प्रजा के प्रति उत्तरदायी होता था। वह शपथ लेकर प्रजा को आश्वासन देता था—'**अलं य बोमिनहयामि उमे आर्त्नी इवज्यया।**' ऋग्वे० १०/१६६/३। पुरोहित राजा को जल देता था और जल देखकर राजा कहता था—"मैं इस राष्ट्र को समृद्ध बनाऊंगा। इसीलिए मै इस जल को देखता हूँ।" आज भी गगाजल लेकर शपथ-ग्रहण करने की प्रथा भारत मे प्रचलित है। एक स्थान पर राजा सभाओ को स्वीकार करता है और राजसभा के समक्ष प्रतिज्ञा करता है —

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
उरू अरत्नी जानुर्नोर्विशो मेऽगानि सर्वतः ॥

(यजु० २०।८)

अर्थात् "मेरी प्रजाओ! मैं तुम्हारे विचारो और तुम्हारी सभा को स्वीकार करता हूँ। अर्थात् तुम्हारी सभाये जो भी निश्चय लेगी, उसे मैं सदा ही स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।"

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि वैदिक युग का राजा निरकुश नही था। उसका स्वरूप प्रजातान्त्रिक था, वह प्रजा के प्रति उत्तरदायी था। आज के प्रजातान्त्रिक भारत के प्रधानमत्री से अधिक, वेद-मत्रो मे राजा को प्रजापालक के रूप मे दर्शाया गया है। वह प्रजा का सेवक है, राज्य की रक्षा करना उसका धर्म है। प्रजा का सुख राजा का सुख है और प्रजा का दुःख राजा का दुःख है—यही भावना हमे वैदिक युग के राजा के प्रजातान्त्रिक स्वरूप मे देखने को मिलती है। किन्तु राजा के चयन का यह अधिकार वेद, प्रजा के उन्ही व्यक्तियो के हाथो मे देता है जो राष्ट्र के हिताहित को पूर्णतया जानते हैं तथा प्रलोभनो एवं दबावो के वशीभूत न होकर स्वस्थ निर्णय लेने मे सक्षम हैं। ○

उपाध्याय,
प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग

परिसर परिक्रमा

११ अगस्त, १९८४ को श्रावणी तथा संस्कृत-दिवस के अवसर पर कुलपति महोदय द्वारा दिया गया भाषण

आदरणीय आचार्य सत्यकाम जी, आचार्य रामप्रसाद जी, देवियो, सज्जनो, मेरे सहयोगियो एवं सहपाठियो !

आज इस अमृतवाटिका में आप लोगों के संस्कृत में भाषण सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सचमुच मैं वही सब सुनने के लिये गुरुकुल मे आया था कि गुरुकुल मे संस्कृत मे सम्भाषण होगे, आपसे संस्कृत मे वार्तालाप होगा। गुरुकुल में स्वाध्याय और पठन-पाठन का माहौल होगा। मुझे खुशी है कि अब वह किसी हद तक गुरुकुल में उपलब्ध हो रहा है।

मै अपने आपको गुरुकुल की ९वी कक्षा का विद्यार्थी मानता हूँ। नवम्बर १९७५ मे, मैं गुरुकुल मे प्रविष्ट हुआ था। मेरी संस्कृत अभी इतनी अच्छी तो नही कि मैं पूर्व वक्ताओं की भांति धाराप्रवाह संस्कृत मे बोल सकूं। इसीलिये आपके समक्ष सस्कृत मे आरम्भ करने के पश्चात् संस्कृत की बेटी हिन्दी के माध्यम से अपने विचार प्रकट कर रहा हूँ।

९ वर्ष तक भी मेरी संस्कृत सुदृढ नही हुई, इसका एक कारण मेरे गुरुजन भी है। यदि गुरुजन आपस में, अपने छात्रों से, अपने कॉलिज मे, मेरे साथ संस्कृत मे बात करते तो मेरी संस्कृत अब तक अवश्यमेव सुदृढ हो जाती। यदि मैं अपनी माँ की भाषा सुनकर हिन्दी बोलना सीख सकता हूँ, यदि मैं अपनी माँ की जुबान से पंजाबी बोलना सीख सकता हूँ, यदि मैं अपनी माँ की जुबान से लेहदी पश्तो बोलना सीख सकता हूँ, तो कोई कारण नहीं कि मैं आपकी जुबान से संस्कृत बोलना नही सीख सकता। मैं आप गुरुजनों को आह्वान करता हूँ कि आप मेरी माँ बने और मुझे और सभी संस्कृत से अनभिज्ञ लोगो को संस्कृत सिखायें। मैं आपसे शुद्ध संस्कृत मे बात करना चाहता हूँ।

यदि सेंट ज़ेवियर स्कूल में यह नियम हो सकता है कि, वे चाहे विद्यार्थी हों या अध्यापक, स्कूल समय मे आपस मे अंग्रेजी में ही बात करेंगे, चाहे वह अंग्रेजी

शुद्ध हो या अशुद्ध, तो क्यो नही गुरुकुल मे यह नियम बन सकता कि कम से कम कक्षाओ के समय मे अध्यापक अपने छात्रो के साथ सस्कृत मे वार्तालाप करें, चाहे शुरु-शुरु में वह सस्कृत अशुद्ध ही क्यो न हो। आइये, आज श्रावणी और सस्कृत-दिवस के शुभ अवसर पर हम इस प्रतिज्ञा मे बध जाये कि हम सस्कृत की रक्षा करने हेतु अपने विद्यालय अथवा महाविद्यालय में आज से सदव सस्कृत मे सम्भाषण करेंगे।

आज सस्कृत-दिवस है। सस्कृत-दिवस का अर्थ है—स्वाध्याय दिवस। मैं स्वाध्याय के तीन अर्थ लेता हूँ—

(१) **स्व—अध्ययन** : स्व-अध्ययन का अर्थ है अपना अध्ययन करना। अपनी अच्छाई-बुराइयो की निगरानी रखना।

(२) **सु—अध्ययन** जो भी पढो, अच्छा ही पढो। हम जब विद्यार्थी थे तो हमे बडे आदमियो की जीवनियाँ पढने को प्रेरित किया जाता था। अत मैं आम छात्रो से भी यह कहना चाहूँगा कि जितना हो सके बडे आदमियो की जीवनियाँ पढो।

(३) **स्वय—अध्ययन** अपने अन्दर अपने आप पढने की आदत डालो। किमी को आपसे यह न कहना पडे कि अब पढो।

आज से आठ वर्ष पूर्व मैने गुरुकुल-पत्रिका मे एक लेख दिया था। यह लेख गुरुकुल-पत्रिका के 'दयानन्द' अक फरवरी १९७६ म प्रकाशित हुआ था। इस लेख मे ३० प्रश्नो की एक प्रश्नावली थी और गुरुकुल के सभी सम्बन्धित व्यक्तियो से अनुरोध किया गया था कि इस प्रश्नावली के परिप्रेक्ष्य मे गुरुकुल का मूल्याकन करे। मैं आज भी उस प्रश्नावली के उत्तरो की प्रतीक्षा म हूँ। आप लोगो की सेवा मे यह प्रश्नावली पुन वितरित की गई है। आशा है आप लोगो के उत्तर मुझे अब शीघ्र ही मिलने आरम्भ हो जायेगे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार मनुष्य के दुश्मन है। इनके अतिरिक्त एक अन्य दुश्मन है—प्रमाद-आलस्य। प्रमाद के रहते हुये हम कभी भी उन्नति नही कर सकते। अत हमे अपने प्रमाद पर नियन्त्रण रखना है। एक अन्य दुश्मन है—रागद्वेष। रागद्वेष के रहते हम उन्नति नही कर सकेगे। पर-निन्दा के जाल मे फँसे रहेगे, परस्पर सहयोग न कर पायेगे। सहयोग मे ही शक्ति है उसमे वचित रहेगे। आइये आज के दिन यह भी व्रत ले कि हम अपने इन दुश्मनो के ऊपर अपना पूरा नियन्त्रण रखगे।

अन्त मे, मुझे आप लोगो से जो बात कहनी है वह है खेल-कूद के बारे मे। आजकल लॉस एंजिल्स मे २३वे ओलम्पिक खेल चल रहे है। भारत की जन-संख्या विश्व की जनसख्या का एक-सातवा भाग है किन्तु पदक-तालिका मे भारत का कही नाम भी नही है। जबकि विश्व के अनेक देश, जो कि हमारे उत्तर-प्रदेश प्रान्त के बराबर है और कई तो इससे भी छोटे-छोटे है, वे कई-कई स्वर्ण पदक जीत चुके है। आइये सोचे कि बात क्या है तथा आज यह भी प्रण ले कि १९८४ के लॉस एंजिल्स मे जो हुआ सो हुआ, १९८६ के सियोल एशियाड और १९८८ के ओलम्पिक मे हम अपने देश को यथोचित मान दिलायेंगे।

ओ३म् शान्ति।

प्रस्तुतकर्त्ता
गिरीशचन्द्र सुन्दरियाल
निजी सहायक, कुलपति
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

प्रौढ़ शिक्षा प्रशिक्षण शिविर

(१-८-८४ से ८-८-१९८४ तक)

—डॉ० त्रिलोक चन्द

प्रौढ शिक्षा प्रशिक्षण शिविर, जो १ अगस्त से ८ अगस्त तक चला, उसके प्रशिक्षक अत्यन्त उत्साहवश ३१ जौलाई ८४ की शाम से ही निवास के लिये निर्धारित स्टाफ रूम मे पहुँचे । १ अगस्त को प्रात सध्या व प्रात राश के उपरान्त ११ बजे उद्‌घाटन हेतु उत्सव मे, जो वेद मन्दिर मे सम्पन्न हुआ, पहुँचे । सर्व-प्रथम ब्रह्मचारियो ने वैदिक मन्त्रो द्वारा यज्ञ का आयोजन किया, तत्पश्चात् समारोह मे आमन्त्रित श्री मूलचन्द्र शास्त्री ने प्रौढ शिक्षा की उपयोगिता पर बोलते हुए ग्रामीण प्रौढ़ो को स्वच्छता आदि का प्रशिक्षण देने का अनुरोध किया । उसके बाद श्री बलदेवप्रसाद जी ने प्रौढ शिक्षा के सम्बन्ध मे अपना सक्षिप्त भाषण दिया । साथ ही श्री सत्यकाम जी ने अपने वक्तव्य मे प्रौढ शिक्षा पर कुछ कहा । अन्त मे समारोह के मुख्य अतिथि महोदय के उद्‌घाटन-भाषण से पूर्व डॉ० त्रिलोकचन्द ने प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम के विकास का विवरण दिया । फिर मुख्य-अतिथि श्री कुलपति जी, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, ने अपने भाषण मे सर्वप्रथम देश के महानुभावो का हवाला देते हुए प्रशिक्षको को इस क्षेत्र मे विशेष जिम्मेदारी निभाने का आदेश दिया । उसके बाद आचार्य रामप्रसाद जी ने वेद मन्त्रो द्वारा प्रशिक्षको को शपथ दिलायी । फिर शान्ति पाठ के साथ समारोह समाप्त हुआ । अन्त मे एक चाय पार्टी हुई, इसके बाद सायकाल तक डॉ० त्रिलोक चन्द ने प्रौढ शिक्षा की समस्याओ पर महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रशिक्षको को नोट कराये। सायकाल ८-३० से १० बजे तक सास्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ, जिसमें सगीत दल कागडी ग्राम व ब्रह्मचारी सजीव कुमार वर्मन के प्रेरणदायी गीतो को मान्य कुलपति जी ने भी पधार कर सुना । १० बजे शान्ति पाठ के पश्चात् सभा समाप्त हुई ।

२-८-१९८४

दूसरे दिन भी सभी प्रशिक्षक प्रातः संध्याव्याम करने के उपरान्त, पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार १०.०० बजे प्रार्थना भवन मे पहुचे । श्री राजेन्द्र जी अग्रवाल, प्रो० आयुर्वेद विभाग ने स्वास्थ्य के सभी पहलुओ पर प्रकाश डालते

हुए उसके लिए स्वच्छता, व्यायाम व सयम आदि को उपयोगी बताते हुए सादा जीवन का मूल-मंत्र तथा परिवार-नियोजन के अनेक खोजपूर्ण तथ्यो का प्रकाशन किया। १२ ३० बजे सभा विसर्जित की गई। पुन ३ से ६ बजे तक गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के उप-कुलपति श्री रामप्रसाद वेदालकार ने 'प्रौढ शिक्षा का राष्ट्र को योगदान' विषय पर व्याख्यान दिया। प्रशिक्षको को त्याग-तपस्या से रहने पर बल दिया।

३-८-१९८४

तीसरे दिन पूर्व की भाँति प्रात कालीन कार्यों को करने के उपरान्त ६ बजे सभी प्रशिक्षक जमाल गाव का सर्वेक्षण करने के लिये चल पड़े। सभी ने पूरे गाव मे प्रेमपूर्वक प्रौढ शिक्षा का प्रचार किया तथा शिक्षा के सिद्धान्तो को साकार करते हुए सर्वेक्षण-पत्रो को पूर्ण किया। १२ ३० बजे तक सभी वापिस लौट आये। पुन भोजन एव विश्राम के बाद २ बजे सभी सभाभवन मे गये। वहाँ डॉ० विजय शकर जी ने उपयोगी तथ्यो पर विद्वतापूर्वक प्रशिक्षको को भाषण दिया और अपने आँकडे प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया कि हमारे देश मे पूजीपती तो बेहद धनवान है व गरीब अत्यन्त गरीब होता चला गया। प्रौढ शिक्षा से उनमे चेतना भरनी होगी। ६ बजे सभा विसर्जित की गई।

४-८-१९८४

प्रशिक्षण शिविर के चौथे दिन प्रात ही सभी प्रशिक्षक प्रात कालीन अनुष्ठानो से निबट कर सात बजे स्कूटरो मे बैठकर मातृ गाँव कागडी एव गाजीवाला का सर्वेक्षण करने के लिये चल पड़े। कागडी गाँव मे पहुचते ही मेरी आँखो के सामने गरीब भारत का नक्शा घूम गया व हृदय को झकझोरने लगा। फिर वहाँ के प्राईमरी स्कूल के बच्चो की छुट्टी कराकर जुलूस के रूप मे शिक्षा से सम्बन्धित नारे लगाते हुए, रुक-रुक कर सभी ग्रामीणो को प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम समझाते हुए, सम्पूर्ण गाव का भ्रमण किया। उसी के मध्य एक ऐसे वृद्ध पुरुष के सभी ने दर्शन किये जिन्होने कुलपति स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ काम करने का सुअवसर प्राप्त किया। उसके बाद पुस्तकालय, गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय मे कार्यरत श्री गोविन्द जी व अन्य श्रेष्ठ कार्यकर्त्ताओ ने शानदार चाय पार्टी का आयोजन किया। तत्पश्चात् स्कूटरो के द्वारा गाजीवाला की ओर सभी ने प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचते ही 'भारत सोने की चिड़ियाँ है' यह नारा नितान्त असत्य प्रतीत होने की आशंका उत्पन्न होने लगी। ग्रामीणो को प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम समझाते हुए जैसे हो आगे बढे, एक टूटी-सी चारपाई पर गरीब माँ-बाप की एक सन्तान को देखकर मेरा तो हृदय टीस से भर गया। सभी ने घूम-घूम कर गाँव में प्रौढ शिक्षा का प्रचार किया। फिर सभी ११ बजे के लगभग गुरुकुल कांगडी

वापस लौट आये। पुन ३ से ६ बजे शका समाधान कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो पर निष्कर्ष निकाले गये। ६ बजे सभा उत्साह के वातावरण मे विसर्जित की गई।

५-८-८४—

प्रशिक्षण शिविर के पाँचवे दिन भी गुरुकुल के पवित्र वातावरण को सराहते हुए, प्रशिक्षकगण ने सभी प्रात कालीन कृत्यो को उत्साहपूर्वक सम्पन्न किया। प्रातराश की परवाह न करते हुए पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार प्रात. सात बजे थ्रीव्हीलरो पर लाउडस्पीकर बॉध कर सर्वप्रथम वेदमत्रो से, मानो वातावरण को सात्विक बनाने हुए, गाव मे प्रौढ शिक्षा के पैगाम को लेकर उत्साहसम्पन्न वातावरण मे चल पडे। सर्वप्रथम जगजीतपुर गाव मे जाकर शिक्षा की उपयोगिता को समझाते हुए, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय द्वारा अपनाये, भारतीय सरकार के प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को सरल भाषा मे व प्रभाव-युक्त शैली मे, वाहनो को प्रत्येक चौराहे पर रोक कर, ग्रामीणजनो को समझाकर दूसरे गाव जमालपुर मे प्रौढ शिक्षा के प्रति लोगो मे दर्शनीय आस्था को उत्पन्न किया। उसके बाद सराय गाव मे जाकर प्रशिक्षको ने उच्च स्वर मे उद्घोष किया कि 'लो दुनियॉ वालो जगाने वाले आ गये। घर-घर मे प्रौढ शिक्षा फैलाने वाले आ गये'। उसके बाद गाव रोहालकी मे जाकर प्रशिक्षको ने प्रौढ शिक्षा के महत्त्व पर प्रभावोत्पादक भाषण देकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भाषा मे कहा कि "सबसे प्रथम कर्तव्य है कि शिक्षा बढाना, देश मे शिक्षा बिना ही पडे रहे। आज हम सब-क्लेश मे है।' गाव रोहालकी मे नरेशकुमार आर्य ने गाव के प्रतिनिधि के रूप मे प्रौढ शिक्षको के सम्मान मे शानदार चाय पार्टी का आयोजन किया।। सभी प्रशिक्षक ११ बजे गुरुकुल पहुँचे।

६-८-८४—

प्रशिक्षण शिविर के छठे दिन भी सभी प्रशिक्षक प्रात १० बजे कक्षा मे पहुचे। डॉ० विजयेन्द्र शर्मा, प्रिंसिपल एस० एम० जे० एन० डिग्री कालेज हरिद्वार का राष्ट्रीय एकता पर भाषण हुआ। उन्होने विभिन्न धर्म, भाषा व संस्कृतियो के कारण भारत को घुन लगे राष्ट्र की सज्ञा दी। सायकाल ३ से ६ बजे तक डॉ० तिलोकचन्द ने प्रौढ शिक्षा के स्वरूप को बताते हुए समस्याओ का निस्तारण किया।

७-८-८४—

सातवे दिन भी प्रात.कालीन दिनचर्या के उपरान्त सभी प्रशिक्षको ने गांव टिबडी व केशवकुञ्ज मे रिक्शा पर लाउडस्पीकर बाँध कर प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को दोनो गाव घूम-घूम कर ग्रामीणजनो को समझाया। ग्रामवासियो मे प्रौढ शिक्षा के प्रति चेतना भाषित हो रही थी। १० बजे सभी प्रशिक्षक गुरुकुल वापस पहुंचे।

१०-३० से १२-३० बजे तक श्री सुरेशचन्द त्यागी, प्रिंसिपल विज्ञान विभाग ने प्रौढ शिक्षा की समस्या का समाधान सरल तथ्यो के द्वारा किया। श्री त्यागी जी ने अत्यन्त उत्तरदायी तरीके से इस कार्यक्रम को चलाने का निर्देश दिया जो प्रशिक्षकों की समझ मे आ गया।

८-८-८४—

आज समापन समारोह वेदमंदिर के भव्य भवन मे आयोजित किया गया। सर्वप्रथम समारोह के मुख्य अतिथि का गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के ब्रह्मचारी श्री हरिशकर व उनके साथियो ने वैदिक गान गाकर स्वागत् किया। इसके बाद प्रशिक्षको ने मातृभूमि की वन्दना एक गीत गाकर की। मुख्य अतिथि श्री आचार्य प्रियव्रत जी का माल्यार्पण किया गया। उन्होने कहा कि अग्रेजी शासनकाल से ही शिक्षा का उद्देश्य सर्विस करना रहा है। प्रौढ शिक्षा को वेद-मत्रो के आधार पर अनिवार्य बताते हुए आचार्य जी ने संकल्प देकर कहा कि इस कार्य-क्रम को साहस के साथ चलाना चाहिए। शान्ति-पाठ के बाद प्रशिक्षको को आशीर्वाद दिया। यह १ अगस्त से चल रहा आयोजन अत्यन्त उत्साह के वातावरण मे सम्पन्न हुआ। इसमे उन्नीस प्रशिक्षको ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

संयोजक
प्रौढ शिक्षा–विभाग
गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार।

अनुदान आयोग की अध्यक्ष गुरुकुल में

हरिद्वार, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय परिसर मे शिक्षको तथा शिक्षकेत्तर कर्मचारियो द्वारा आयोजित सभा मे स्वागत-समारोह का उत्तर देते हुए जब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्ष श्रीमती माधुरी शाह ने स्वामी श्रद्धानन्द की राष्ट्रीय आन्दोलन के मच से की गई सेवाओ तथा शिक्षा क्षेत्र मे दी गई नवीन दिशाओ का उल्लेख करते हुए, गुरुकुल के उद्देश्य को स्पष्ट किया तो तालियो की गडगडाहट मे जैसे काल अपनी गति को ही भूल गया। उन्होने कहा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के सुरम्य, शान्त वातावरण को देखकर जहाँ मुझे प्रसन्नता हुई है, वहाँ इसकी शैक्षिक प्रगति तथा स्थायित्व को देखकर भी मुझे सतोष हो रहा है। मेरी इच्छा है कि विश्वविद्यालय के अधिकारी आगामी २५ वर्षों तक की योजनाएँ बनाकर आयोग को दे, हम वरीयता को दृष्टि मे रखते हुए इस संस्थान के विकास के लिये हर सम्भव सहायता देगे। गुरुकुल मे प्रारम्भ से ही प्राचीन परम्परा तथा आधुनिकता का, वैदिक ज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान का समन्वय रहा है। मै चाहती हूँ कि एक ओर प्राचीन भारतीय विद्याओ के, विशेषत. वैदिक साहित्य के, उच्चतर अध्ययन और अनुसन्धान के अद्वितीय केन्द्र के रूप मे जहाँ इसका विकास हो, वहाँ इसमे सगणक विज्ञान के आधुनिकतम पाठ्यक्रमो का भी समावेश होना चाहिये। प्राचीन दुर्लभ पाण्डु-लिपियो के संरक्षण की दिशा मे भी विशेष प्रयत्न होना चाहिये तथा व्यवसा-योन्मुख और प्रसार शिक्षा के लिए कार्य होना चाहिये। अन्य विश्वविद्यालयो से इसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। अत उस व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए, इसकी स्थापना के मूल उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए, आप लोगो को आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र मे रचनात्मक योग देना है। उन्होने आश्वासन दिया कि कन्या गुरुकुल तथा स्त्री शिक्षा के लिये भी आयोग, विश्वविद्यालय को यथासभव सहायता देगा।

इससे पूर्व विश्वविद्यालय की प्रगति का विवरण देते हुए कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने, जहाँ विश्वविद्यालय द्वारा सचालित वैदिक कार्यशाला, जीवन-मूल्य और समाज के अन्त सम्बन्धो पर आश्रित राष्ट्रीय सगोष्ठी, वैदिक योग केन्द्र, कागडी ग्राम विकास योजना तथा गगा प्रदूषण अध्ययन योजना की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला, वही जनोपयोगी दृष्टि से विज्ञान के लिये किये गये कार्यों का भी परिचय दिया। विश्वविद्यालय के प्रकाशनो को देखकर श्रीमती शाह ने सतोष प्रकट किया। स्मरण रहे, पुराविद्याओ की दृष्टि से गुरुकुल का पुस्तकालय उत्तर भारत मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

—भोपाल सिंह
एम० ए० (प्रथम वर्ष)

निकष पर

(पुस्तक-समीक्षा)

पुस्तक-परिचय	—	**वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त (तीन भाग)**
लेखक	—	**आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति**
		पूर्व-कुलपति, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।
प्रकाशक	—	मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज, मेरठ
पृष्ठ सख्या (तीनो भाग)	—	१५००
मूल्य	—	२४० रुपये

'वेदो के राजनीतिक सिद्धान्त' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ एक अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ है। भारतीय आर्य-परम्परा में सभी ऋषि-मुनि और आचार्य वेद को विविध विद्या-विज्ञानो से युक्त मानते आये हैं। महर्षि व्यास और आचार्य शकर की सम्मति मे तो वेद इतना अधिक ज्ञान-विज्ञान का सागर है कि उन्होने वेद की विद्यमानता को ईश्वर की सिद्धि मे एक युक्ति के रूप मे उपस्थित किया है। उनकी सम्मति मे वेद का रचयिता सर्वज्ञ परमात्मा ही हो सकता है। मनु ने कहा है कि वेद को जानने वाला व्यक्ति सेनाओ का सघटन और सचालन कर सकता है, राज्यो का सचालन कर सकता है, न्याय-व्यवस्था का सचालन कर सकता है, और सारी धरती के विशाल राज्य का भी सचालन कर सकता है। ऐसा कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नही है, जिसमे वेद के आधार पर और वेद के अपने शब्दो मे वेद मे वर्णित किसी विद्या-विज्ञान को प्रदर्शित किया गया हो। प्रस्तुत ग्रन्थ मे वेद के आधार पर और वेद के अपने शब्दो मे वेद मे वर्णित राजनीति-विज्ञान को विस्तृत रूप मे दिखाया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि वेद मे सर्वांगपूर्ण राजनीति शास्त्र का वर्णन है।

ग्रन्थ के सविधान काण्ड, अभ्युदय काण्ड और प्रतिरक्षा काण्ड मे तीन भाग है। ग्रन्थ मे छोटे माण्डलिक राज्यो से लेकर सारी धरती के चक्रवर्ती राज्य (विश्वराज्य) तक के निर्माण, उनकी ससदो, मत्रीमण्डल, चुनाव-पद्धति, प्रजातन्त्र का स्वरूप, न्याय-व्यवस्था, स्त्रियो के राजनीतिक अधिकार, उदार राजनीति, समाज का सघटन और उसकी आर्थिक व्यवस्था, प्रजाओ के सुख-समृद्धि के उपाय, राष्ट्रवासियो का परस्पर प्रेम सहयोग और सद्भाव, राष्ट्रो को पतन से बचाने के उपाय, सैन्य सघटन, शस्त्र- अस्त्र, और युद्धनीति आदि अनेकानेक विषयो के सम्बन्ध मे वेद के विचारो को प्रदर्शित किया गया है। यह ग्रन्थ लेखक के २५ वर्ष से भी अधिक समय के अध्ययन, अनुसधान और चिन्तन का परिणाम है, तथा अपने प्रकार का सर्वथा मौलिक और पहला ग्रन्थ है। सारे वैदिक-साहित्य मे इस प्रकार का दूसरा ग्रन्थ नही है।

वेद में अनेक ऐसे राजनीतिक तत्त्व वर्णित पाये जाते हैं जिनसे आज का राजनीतिक जगत् भी लाभ उठा सकता है। उदाहरण के लिये वेद मे एक स्थान पर कहा गया है कि "जनं बिभ्रती बहुधा विवाचस नानाधर्माण पृथिवी यथौकसम्, सहस्रः धारा द्रविणस्य मे दुहा ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती" अर्थात् यदि कभी किसी राष्ट्र मे अनेक भाषाओ को बोलने और अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहने लग जायें तो उन्हे इस प्रकार परस्पर प्रेम से मिल कर रहना चाहिये जिस प्रकार एक घर के लोग प्रेम से मिल कर रहा करते है। ऐसा करने से राष्ट्र की भूमि राष्ट्रवासियों के लिये धन-सम्पत्ति और कल्याण-मगल की हजारो धाराओ को बहाने लगेगी, जिस प्रकार दुधारू गाय दूध की धारायें बहाती है। भाषाओ और धर्मों के नाम पर बुरी तरह अशान्त और सकट-ग्रस्त आज के भारत के लिये वेद का यह उपदेश कितना सामयिक और उपयुक्त है। इस प्रकार वेद के राजनीति विज्ञान को अपने इस ग्रन्थ मे उद्घाटित करने और उसे जनता के सम्मुख लाने के प्रयत्न द्वारा लेखक ने प्राणिमात्र की महानी सेवा की है।

महान् हुतात्मा दिवगत श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के चरणो मे बैठकर, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार मे लेखक ने जो दीर्घकाल तक सस्कृत और वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है, उसी का परिणाम यह विशाल मौलिक ग्रन्थ है।

—बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

x x x

पुस्तक का नाम	—	**"संस्कृत काव्यशास्त्र पर भारतीय दर्शन का प्रभाव"**
लेखक	—	**अमरजीत कौर**
प्रकाशक	—	भारतीय विद्या प्रकाशन, १–यू०बी०, जवाहरनगर, बंगलो रोड, दिल्ली—११०००७ (भारत)
संस्करण	—	प्रथम, १९७९
पृष्ठ संख्या	—	२६०
मूल्य	—	४०—०० रुपये

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य संस्कृत-काव्यशास्त्रीय तत्त्वो पर भारतीय दर्शन-पद्धतियो के प्रभाव का आकलन एव मीमांसा करना है। वस्तुत: संस्कृत-काव्यशास्त्र भारतीय दर्शन की विविध पद्धतियो से प्रभावित रहा है। उसने अनेक दार्शनिक विचारो एव सिद्धान्तो को अपनी आवश्यकतानुसार ढालकर ग्रहण किया है। अतएव सस्कृत किंवा भारतीय काव्यशास्त्र को भलीभाँति हृदयङ्गम करने के लिए भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि का सम्यक् ज्ञान अनिवार्य है। काव्यशास्त्र के प्रसङ्ग में भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि के तन्तु संस्कृत काव्यशास्त्रीय मूल-ग्रन्थो तथा टीका-टिप्पणियो मे बिखरे पड़े है। मूल-ग्रन्थो तथा टीका-टिप्पणियों में विकीर्ण इस सामग्री के मूल आधार को तत्तद्दर्शनशास्त्र के मूल-ग्रन्थो मे खोजकर आधुनिक पाठक के समक्ष उपस्थित करना और उसकी मीमासा करना अपने-आपमे एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। उदाहरणार्थ, शब्दवृत्तियो को समझने के लिए वाक्यवादो मीमासको के वाक्य तथा तात्पर्य के सिद्धान्त का ज्ञान, अनुमान ही मे ध्वनि का अन्तर्भाव करने वाले महिमभट्ट एवम् अन्य नैयायिक आचार्यों के हृदय को समझने के लिए नैयायिको की अनुमान-प्रक्रिया तथा न्यायशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का सम्यक् बोध, सङ्केतग्रह के प्रसङ्ग मे पतञ्जलि, भर्तृहरि आदि वैयाकरणो के जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा के सिद्धान्त, जातिमद्व्यक्तिवादी नैयायिको की धारणा, जातिवादी मीमासको के सिद्धान्त तथा बौद्धो के अपोहवाद का सुपरिचय आवश्यक है। इसी प्रकार रस-सिद्धान्त के सम्यक् अवबोध के लिए साख्य के सत्कार्यवाद, शैवदर्शन तथा वेदान्तदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो का ज्ञान अपेक्षित है। काव्यशास्त्र मे व्याकरण-शास्त्र, कामशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि की उपयोगिता भी कम नही है। यद्यपि काव्यशास्त्र को पल्लवित, पुष्पित तथा फलित करने मे प्राय: सभी शास्त्रो का न्यूनाधिक योग रहा है तथापि दर्शनशास्त्र तथा व्याकरण ने उसे सर्वाधिक प्रभावित किया है। अत काव्यशास्त्र पर दार्शनिक प्रभाव का अध्ययन अत्यन्त उपादेय तथा महत्त्वपूण है। काव्यशास्त्र के प्रसङ्ग मे भारतीय दर्शन की विविध शाखाओ की पृष्ठभूमि का एकत्र सङ्कलन एवं समालोचन कदाचित् सर्वप्रथम

प्रस्तुत पुस्तक ही में हुआ है, यद्यपि छिटपुट लेख इस विषय में लिखे जाते रहे है ।

डॉ० अमरजीत कौर की यह पुस्तक पाँच अध्यायो मे विभक्त है, जिनके बाद तीन परिशिष्ट, सहायक ग्रन्थसूची एवं नामपदानुक्रमणी दी गई है। इसके "साहित्यशास्त्र एव दर्शन" नामक प्रथम अध्याय मे लेखिका ने काव्यशास्त्र का तर्कशास्त्र, पूर्वमीमासा एवम् अन्य दर्शनों से सम्बन्ध निर्दिष्ट कर धर्मकीर्त्ति, भामह, दण्डी, मुकुलभट्ट, अभिनवगुप्त, महिमभट्ट, भोज, हेमचन्द्र, शौद्धोदनि, अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ इन दार्शनिक आलङ्कारिको द्वारा अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे अपने दार्शनिक चिन्तन का उपयोग सङ्केतित किया है। "रस-विवेचन का दार्शनिक आधार" नामक द्वितीय अध्याय मे रस-संज्ञा की औपनिषद् पृष्ठभूमि प्रदान करने के बाद रसनिष्पत्तिविषयक भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद अथवा आरोपवाद, श्रीशङ्कुक के अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद तथा अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद, रस की साख्यवादी व्याख्या, रसमीमासा मे वेदान्तीकरण, रसस्वरूप और प्रमुख रसो पर दार्शनिक प्रभाव आदि का अध्ययन किया गया है। तृतीय अध्याय "काव्यात्ममीमासा का दार्शनिक आधार" मे दर्शन मे आत्मा के विवेचन के सङ्केत के पश्चात् विदुषी लेखिका ने काव्यशास्त्र मे काव्यात्मा के रूप मे स्वीकृत रीति, ध्वनि, रस, वक्रोक्ति तथा औचित्य तत्त्वो के दार्शनिक मूल का सफल अन्वेषण किया है। "शब्दशक्तिमीमासा का दार्शनिक आधार" नामक चतुर्थ अध्याय मे दर्शन मे शब्दार्थ-विवेचन के सङ्केत के बाद काव्यशास्त्र मे अभिधा तथा सङ्केतग्रह विषयक विभिन्न मतो तथा काव्यशास्त्र द्वारा वैयाकरणो के अनुगमन, लक्षणा एव लक्षणाभेदो और तद्विषयक दार्शनिक मतो, तथा व्यञ्जना की मीमासा की गई है। व्यञ्जनाप्रसङ्ग मे तात्पर्य तथा अनुमिति-सिद्धान्त का और अधिक स्फुट एव निष्पक्ष विवेचन अपेक्षित था। "अलङ्कार-निरूपण का दार्शनिक आधार" नामक पञ्चम अध्याय मे काव्यशास्त्रगत अलकार-वर्गीकरण के दार्शनिक आधार के निर्देश के बाद अर्थान्तरन्यास, अर्थापत्ति, अनुमान, अभाव, असङ्गति, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, उपमा, उपमान, ऐतिह्य, काव्यलिङ्ग, जाति, दृष्टान्त, साम्य, वैषम्य, परिणाम, परिसंख्या, प्रत्यक्ष, शब्दप्रमाण, सम्भव, सम्भावना, स्मृति, सशय, सूक्ष्म, स्वभावोक्ति इन अलकारो की दार्शनिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। परिशिष्टो मे प्रथम मे काव्यशास्त्र मे प्रयुक्त दार्शनिक शब्दावली का परिचय दिया गया है, जो यदि और अधिक विस्तृत रहा होता तो अच्छा होता। द्वितीय मे काव्यशास्त्र मे उपलब्ध दर्शनशास्त्र की अभिव्यक्तियाँ और तृतीय मे काव्यशास्त्र मे दर्शनशास्त्र के भावो को अभिव्यक्त करने वाली अभिव्यक्तियाँ सकलित की गई है। इस प्रकार इस पुस्तक मे काव्यशास्त्रीय तत्त्वो एवं सिद्धान्तो की दार्शनिक पृष्ठभूमि

का सयत शब्दों मे सफल आकलन हुआ है। आशा है यह पुस्तक काव्यशास्त्र-प्रेमी पाठको को पर्याप्त रुचेगी और अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगी।

पुस्तक का मुद्रण तथा साज-सज्जा भी उत्तम है, जिसका श्रेय कुशल प्रकाशक को जाता है।

—मानसिंह
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,
सस्कृत विभाग,
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

× × ×

पुस्तक-परिचय	—	नागार्जुन
सम्पादक	—	डॉ० सुरेशचन्द्र त्यागी
प्रकाशक	—	आशिर प्रकाशन, सहारनपुर
पृष्ठ सख्या	—	२७६
मूल्य	—	४० रुपये

'नागार्जुन' अनियतकालीन पत्रिका 'सम्पर्क' का विशेषाङ्क है। हिन्दी के प्रख्यात जनवादी कवि वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' के व्यक्तित्व और कर्तृव्य पर २८ निबन्ध इसमें सकलित है। कवि के व्यक्तित्व, जीवनी, काव्य-चेतना, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति-प्रियता, उपन्यास, लोकतत्व, क्रान्ति-चेतना तथा व्यग्य-हास्य जैसी काव्यप्रवृत्तियो का विशद विवेचन विभिन्न विद्वानो ने अपने लेखो मे किया है।

कवि नागार्जुन पर एक ओर विष्णु प्रभाकर तथा प्रभाकर माचवे जैसे साहित्यकारो ने तो लिखा ही है, डॉ आनन्दप्रकाश दीक्षित, डॉ० प्रेमशंकर, डॉ० विश्वनाथ अय्यर तथा डॉ० विश्वंभरनाथ उपाध्याय जैसे रसवादी और जनवादी समीक्षको ने भी लिखा है। विद्वान् सम्पादक ने विभिन्न लेखकों से लिखवाकर नागार्जुन का समग्र मूल्यांकन एक स्थान पर प्रस्तुत करने का कुशल प्रयत्न किया है।

पत्रिका में दो परिशिष्ट हैं—(१) नागार्जुन का साहित्य, तथा (२) नागार्जुन की कविताएँ। ये दोनो परिशिष्ट शोधार्थियो के लिए उपयोगी हैं। विवेच्य कवि के साहित्य का वर्षक्रम से वर्गीकरण करते हुए रचनाओ का प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ सख्या, मूल्य तथा संक्षिप्त प्रतिपाद्य देकर कवि के सुदीर्घ रचना-अन्तराल का परिचय दिया गया है। इस सामग्री से कुछ अज्ञात तथा अल्पज्ञात तथ्यो की प्राप्ति भी होती है। 'युगधारा' का पुनर्मुद्रण १९८२ मे हुआ पर इसके प्रथम सस्करण के ज्ञापन से ही प्रतीत होता है कि १९४३ तक कवि 'यात्री' उपनाम से लिखते रहे तथा उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'राम के प्रति' थी जो १९३५ मे लाहौर से प्रकाशित साप्ताहिक 'विश्वबन्धु' मे छपी थी। मैथिली मे प्रकाशित प्रथम रचना 'मिथिला' थी जो १९३० मे लहेरिया सराय से छपी थी।

नागार्जुन की कविताओ के वर्णन-वैभव, सास्कृतिक सम्पदा, शोषण-चक्र, सत्ता की असगति तथा जीवन की प्रगतिशील सामाजिक भूमिका को समझने के लिए इस पुस्तक के लेख अत्यन्त उपयोगी हैं। डॉ० विजयबहादुर सिह का यह कथन उल्लेखनीय है कि हिन्दी की वामपथी कविता भले ही मुक्तिबोध को कला-गुरु की उपाधि दे किन्तु अनुसरण वह नागार्जुन का ही करेगी क्योकि नागार्जुन का सर्जक व्यक्तित्व विविधासम्पन्न और लोक की निकटस्थ पहचान से निखरा हुआ है। नागार्जुन ही एक ऐसे कवि हैं जो कभी भी किसी के द्वारा पालतू या सरकारी बनाए जाने की नियति से बच सके है। उनकी भाषा-सामर्थ्य पर डॉ० प्रेमशकर के इस निष्कर्ष से कौन असहमति व्यक्त कर सकता है कि कविता के गद्य का सस्करण बनते हुए समय मे नागार्जुन की छद और लय की सही पहचान विशेष रूप से हमारा ध्यान अपनी ओर खीचती है—छद पर नियन्त्रण की क्षमता। नागार्जुन की कविता भाषा के आभिजात्य को ललकारती हुई आगे बढती है, जिन्दगी के बीच से पाए गए मुहावरे मे अपनी बात कहती हुई, और यही हमे आश्वस्त करता है कि उनकी रचनायात्रा स्वय को निरन्तर सदर्भों से जोड़ती रहेगी।

प्रेमचन्द की ग्राम्यचेतना को समाजवादी-चेतना में परिणित कर उन्होने कथा साहित्य की रचना की। उन्होने बिहार प्रान्त के १९३७-३८ के सशक्त किसान आन्दोलन को निकट से देखा। गोदान की सुषुप्त कृषकचेतना बलचनमा में आकर पूर्ण हुकार के साथ जागृत हुई। जमीदारी के उन्मूलन के बाद कृषि का आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, पचवर्षीय योजनाएँ, सहकारी समिति, चकबदी, भूमि सुधार तथा राजनीतिक उथल-पुथल सभी कुछ तो उनके कथा-साहित्य मे मिलता है। वर्ग-संघर्ष और सक्रिय नेतृत्व का जो अभाव अन्य प्रगतिशील साहित्यकारों मे—विशेषतः प्रेमचन्द मे दिखाई पडता है—उसकी पूर्ति नागार्जुन की रचनाओं

में है। हर्ष है कि इस पुस्तक के लेखकों ने ईमानदारी के साथ नागार्जुन की सामूहिक चेतना के साथ न्याय किया है। यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु तथा रांगेय राघव से तुलना करते हुए यथार्थबोध, तीव्रता, सश्लिष्टता, आक्रोश, प्रतिहिंसा, प्रतिरोध तथा मध्यकालीन रोमास, रहस्य तथा रूढिविरोध की दृष्टि से नागार्जुन की प्रतिबद्धता पर, सामाजिक लक्ष्य पूर्ति पर इन लेखको ने गम्भीर दृष्टि डाली है।

अतत कहा जा सकता है कि नागार्जुन को समग्र रूप से समझने के लिए यह पुस्तक उपादेय है और इस एक कसौटी के आधार पर ही इसकी महत्ता निर्विवाद स्वीकार्य है। यह पुस्तक पुस्तकालयो मे खरीदी जानी चाहिए। हिन्दी के अध्येताओ के लिए तो सग्रहणीय है ही। संघर्षशील जनता के विपन्न बहुलाश को तथा उसके सह-सवेदनशील चिन्तको को भी इससे प्रेरणा मिलेगी, स्वयं नागार्जुन के निजी जीवन की यही शक्ति है। बाबा के ही शब्दो मे—

जली ठूंठ की डाल पर गई कोकिला कूक
बाल न बांका कर सकी शासन की बंदूक।

—**विष्णुदत्त 'राकेश'**

× × ×

पुस्तक का नाम	—	**हरियाणा का हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास**
लेखक	—	**डॉ० शिवप्रसाद गोयल**
प्रकाशक	—	नटराज पब्लिशिग हाउस, करनाल
पृष्ठ	—	१०६
मूल्य	—	४५ रुपये

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प्रान्तीय साहित्यकारो के कर्त्तव्य का विवरण प्राय उपलब्ध नही होता। इधर हिन्दी मे शोधोपाधि सापेक्ष तथा निरपेक्ष, दोनो दृष्टियो से भिन्न-भिन्न प्रदेशो के योगदान का स्वतन्त्र आकलन और विवेचन हुआ है और इस प्रकार सम्पूर्ण देश की एक साहित्यिक चेतना उजागर हुई है। हरियाणे के प्रसिद्ध गद्य-लेखक बाबू बालमुकुन्द गुप्त तथा पण्डित माधवप्रसाद मिश्र की चर्चा प्राय सभी साहित्यग्रन्थो मे उपलब्ध है, किन्तु १२वी शती से लेकर आज तक के आठ सौ वर्षों के सुदीर्घ अन्तराल मे

लिखे गए ग्रन्थो की चर्चा ऐतिहासिक प्रवृत्तियो के परिप्रेक्ष्य मे डॉ० गोयल से पूर्व हिन्दी के किसी विद्वान् ने अपने ग्रन्थ मे नही की। नाथपंथी साहित्य, सूफी काव्य, वैष्णवभक्ति काव्य, जैन काव्यधारा, संत काव्य, शृंगार काव्य तथा हिन्दी गद्य लेखन की दृष्टि से हरियाणे के साहित्यकारो का विवेचन इस कृति मे पहली बार हुआ है। यो डॉ० चन्द्रकांत बाली ने पजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास मे कुछ साहित्यकारो का परिचय दिया था तथा हरियाणा के हिन्दी-सेवी पुस्तक मे शांत शास्त्री ने भी विहगावलोकन किया था पर काल-क्रमानुसार प्रवृत्तिमूलक अध्ययन की दृष्टि से डॉ० गोयल की रचना साहित्यिक जिज्ञासुओ तथा शोधकर्त्ताओ के लिए अधिक उपयोगी है।

सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्येतिहास के विद्वान् डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के इस कथन से हम सर्वथा सहमत है कि डॉ० शिवप्रसाद गोयल ने इस पुस्तक की रचना करके हिन्दी साहित्य की—विशेषत हरियाणा के हिन्दी-साहित्य की बहुत बडी सेवा की है तथा उन्होने हरियाणा के अनेक जाने-अनजाने साहित्यकारो की कृतियो का मूल्यांकन करके हरियाणा के गौरव की अभिवृद्धि मे योग दिया है। साथ ही मैं यह भी नि संकोच कह सकती हूँ कि यह रचना हरियाणा के साहित्येतिहास के जिज्ञासुओ एव शोध-कर्त्ताओ के लिए भी अत्यन्त उपयोगी एव महत्त्व-पूर्ण सिद्ध होगी।

पुस्तक की साज-सज्जा आकर्षक है, कही-कही छापे की त्रुटियाँ रह गई है। आशा है, आगामी सस्करण मे ठीक कर दी जायेगी। हिन्दी के उद्भवकाल से ही समानान्तर हरियाणा-साहित्यकारो का लेखन नि सन्देह गौरव की बात है। श्रीधर कवि से लेकर डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा तक का परम्पराबद्ध ऐतिहासिक विवरण जहाँ इस कृति की प्रमुख विशेषता है, वहाँ व्यवस्थित लेखन-योजना तथा स्वच्छ, सरल और सारगर्भ प्रतिपादन-शैली इसकी दूसरी विशेषता है।

डॉ० गोयल इस कृति के लिए बधाई के पात्र है। आशा है, निरन्तर वर्धमान हरियाणा-साहित्य का वह आकलन करते रहेगे तथा इस कृति को सर्वांग और अद्यतन बनाने का प्रयत्न करते रहेगे।

—श्रीमती प्रतिमा शर्मा
रिसर्च स्कॉलर (हिन्दी)

पुस्तक का नाम	—	**संस्कृत नाटकों का जीव-जगत्**
लेखक का नाम	—	**डॉ० कृष्ण कुमार**
पृष्ठ सख्या	—	२१८
मूल्य	—	८२-०० रुपये
प्रकाशक	—	मयंक प्रकाशन, भूषण भवन, मण्डी बास, मुरादाबाद।

जीव जगत् का मानव के साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, विशेषकर भारतीय सस्कृति मे, जहाँ वृक्ष भी देवो का पुत्रत्व प्राप्त कर लेते है तथा लताएँ भी अपने स्नेहीजनो के प्रति पुष्प एवं फल प्रदान करती है, उस साहित्य मे जीव-जगत् के विभिन्न रूपो का निदर्शन स्वाभाविक ही है।

नाटको मे पशु-पक्षियो का वर्णन इतना विशद नही हो सकता जितना कि काव्य मे या गद्य-साहित्य मे इसका अवसर होता है, क्योकि अभिनेय होने तथा वर्णनात्मक प्रसंगो की न्यूनता के कारण यह कठिन होता है। परन्तु सस्कृत नाटककारो को जहाँ भी इसका जरा-सा भी अवसर प्राप्त हुआ, उसका उन्होने पूर्ण उपयोग किया है। अतः जन्तुओ के विभिन्न पक्ष दर्शको के समक्ष स्पष्ट होते चले गये है, फिर भी वे अपना इतना प्रभाव नही छोड पाते कि जो चिरस्थायी हो सके। इस दृष्टिकोण से नाटको के जीव-जगत् को एकत्र करना उपादेय है।

प्रस्तुत पुस्तक भास से दिङ्नाग पर्यन्त (४०० ई०पू० से १००० ई० तक) लगभग १४०० वर्षं के लम्बे अन्तराल में स्थित ४६ नाटको के आधार पर लिखी गयी है। ४१ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना, जन्तुओ का मानव से सम्बन्ध, प्राचीन साहित्य मे जन्तुओ का उल्लेख, संस्कृत नाटको मे जन्तुओ का उल्लेख, जन्तु-विज्ञान, जन्तुओ का वर्गीकरण, जन्तुओ का पालना एवं अलकरण, जन्तुओ के प्रति धार्मिक आस्थाएँ, मानवीय भावनाएँ, कवि प्रसिद्धियाँ, अलंकारो के रूप मे उपमान आदि के माध्यम से प्रयोग, मानव के लिए जन्तुओ का उपयोग, इत्यादि सामग्री के माध्यम से अत्यन्त रुचिकर एवं प्रभावकारी बन पडी है। पुस्तक का उपयोग इस प्रस्तावना से पर्याप्त बढा है।

विभिन्न जन्तुओ के मानवोपयोग पर भी लेखक ने कृषि, भोजन, वस्त्र और अलंकार आदि के माध्यम से संस्कृत नाटको की छवि को उभारा है। अनेक स्थानो पर वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण एवं महाभारत तथा पुराणो के वाक्यो से उन वर्णनो को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ -

अध्याय मे उनके जीवनी तथा कथापरक साहित्य का मूल्यांकन हुआ है। सप्तम अध्याय मे उनकी कहानियों का संक्षिप्त परिचयपूर्वक विस्तृत विवेचन है। अष्टम अध्याय मे उनके काव्यपक्ष तथा भावपक्ष पर विचार हुआ है तथा नवम् अध्याय मे परिव्राजक जी द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार और सेवाएँ शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी और ईसाई प्रचारक, हिन्दी और ब्रह्मसमाज, काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी सम्मेलन, गुरुकुल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा डी०ए०वी० कालेजो को उनका योगदान, भारतेन्दु और उनका मित्रमण्डल, दक्षिणी भारत तथा पञ्जाब मे उनके द्वारा हिन्दी प्रचार आदि विषयो का प्रतिपादन है। अन्त मे उपसहार के पश्चात् परिव्राजक जी के साहित्य का काल-क्रमानुसार उल्लेख करते हुए तीन पृष्ठो में सहायक-ग्रन्थो की सूची दी गई है। वस्तुतः लेखक ने परिव्राजक जी के व्यक्तित्व एव साहित्यिक उपलब्धियो का इस पुस्तक मे अधिकारिक विवेचन किया है।

राजपाल एण्ड सन्ज जैसे प्रतिष्ठित प्रकाशक द्वारा पुस्तक का प्रकाशित करना ही इस बात का द्योतक है कि कार्य अत्यन्त उत्तम तथा जिज्ञासु अध्येताओं के लिए पठनीय तथा सग्रहणीय है। कागज तथा मुखपृष्ठ अत्यन्त उत्कृष्ट एवं आकर्षक बन पड़ा है।

—राकेश शास्त्री
सस्कृत विभाग,
गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय